दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

कथा-कुंज

[हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का
प्रतिनिधि संग्रह]

—:o:—

सम्पादक—

प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल एम० ए०,

पंजाब विश्वविद्यालय जालंधर

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

बी० ए० एल-एल० बी०

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

हिन्दी-संस्कृत-पुस्तक-विक्रेता

किनारी बाजार, दिल्ली।

पञ्चम संस्करण } १९५३ { सजिल्द मूल्य ३॥=)

प्रकाशक—

मोतीलाल बनारसीदास,

नेपालीखपड़ा बनारस।

मुद्रक—

श्रीशान्तिलाल जैन,

श्रीजैनेन्द्रप्रेस,

नेपालीखपड़ा; बनारस।

Raj Kumar Goswami B.A.

विषय-सूची

———

दो बातें

कहानी उतनी ही पुरानी है जितना कि मानव।

सृष्टि के आरम्भ में जब एक सुनाने वाले को एक सुनने वाला मिला तभी शायद कहानी ने जन्म लिया। आखिर अपनी अपूर्ण परिभाषा में कहानी है ही क्या ?–किसी घटना का वर्णन मात्र ! मनुष्य के जीवन में जब भी पहली घटना घटी, सुनाने के लिये जब भी उसके पास कुछ हुआ, सुनने के लिए जब भी उसे कोई मिला तभी कहानी का आविर्भाव हुआ।

तनिक कल्पना कीजिए कि प्राचीन काल का कोई व्यक्ति-जो नहीं जानता कि यह जो विशाल पृथ्वी उसके सामने खुली पड़ी है, सहस्रों प्रकार की वस्तुएं पैदा करने की क्षमता रखती है, नहीं जानता किस प्रकार हल चलाया जाए, खेती बोई जाए और पृथ्वी से अन्न पैदा किया जाए और

जिसकी पेट पूजा का एकमात्र आधार मृगया है।—कल्पना कीजिए कि आदि काल का ऐसा ही कोई [illegible] पशु के शिकार को निकलता [illegible] दूर तक चला जाता [illegible] है। उस पशु के पीछे वह बहुत [illegible] पार [illegible] है।—झाड़ियों से निकलता, झाड़ झंखार [illegible] करता। अन्त में ऐसी जगह आ जाती है कि पशु आगे नहीं बढ़ सकता। मुड़ कर वह मुकाबले को तैयार हो जाता है। दोनों एक दूसरे पर झपटते हैं। युद्ध होता है। शिकारी घायल तो हो जाता है, पर अपने शिकार को मार गिराता है और अपने घाव की परवाह न करके अपने निवासस्थान को वापस आ जाता है। अब यदि उसका एक भी साथी है, शिकारी को बात करनी आती है और उसका साथी उसकी बात समझने की योग्यता रखता है, तो यह स्वाभाविक है कि वह अपने साथी को, उस हिंस्र पशु से अपनी मुठभेड़ की कहानी सुनाए।

सुनाने के लिए जिसके पास कोई घटना है, कंठ जिसका मूक नहीं है, वह उसे सुनाएगा ही, और जो वह सुनाएगा वह किसी न किसी रूप में कहानी ही की सूरत लेगी। अब यदि वह शिकारी बातूनी है, या शिकार में अपनी सफलता पर गर्व से फूला नहीं समाता, तो वह उस घटना को बढ़ा चढ़ा कर और भी ज्यादा दिलचस्प बना कर बयान करेगा। यहीं अपरिपक्व कहानी में कला का समावेश होता है। फिर ज्यों ज्यों मानव जाति का इतिहास पुराना होता जाता है, जीवन में व्यापकता और विभिन्नता आती जाती है; घटनाएं अधिक होती हैं, सुनाने के लिए बहुत तरह से बहुत कुछ होता

है, कहानी भी व्यापक और विभिन्न रूप धारण करती जाती है। आज के युग में कहानी उतनी ही व्यापक है जितना कि जीवन और कला उतनी ही सुघरी हुई है जितनी की सुघड़ता !

प्राचीन हिन्दी कहानी

कहानी के बीज, जैसा कि हमने कहा, आदि काल के उस शिकारी की कहानी में भी है। वे हैं—घटना और उस घटना की मनोरंजकता। यदि घटना दिलचस्प नहीं, तो सुनने वाला ऊब जाएगा और कोई और बात सुनने का इच्छुक होगा। यही मानव प्रकृति है। कहानी जब सुनाई जाती थी, तब उस काल के कहानी सुनाने वालों को और बाद को जब लिखी जाने लगी, तो उस काल के आरम्भिक लेखकों को इस बात का ज्ञान था ! यही कारण है कि हमें प्राचीन काल की कहानियां आज की कला के अनुसार, चाहे कितनी ही अस्वाभाविक तथा काल्पनिक मालूम हों, हम उनके एक गुण से इनकार नहीं कर सकते और वह गुण है उनकी मनोरंजकता। प्राचीन संस्कृत साहित्य की कहानियां अध्यात्मविषयक हों अथवा दूसरी, उन में दिलचस्पी जरूर थी। इस संबंध में हम पंचतंत्र और बैताल पचीसी का नाम ले सकते हैं। अरब और फारस की कहानियों में भी यह दिलचस्पी कम नहीं थी। अलफ़लैला[1] आज भी उतनी दिलचस्पी से पढ़ी जाती है। उर्दू के आरम्भिक काल की कहानियों पर नज़र डालिये, 'फिसानाए आज़ाद'[2] और दूसरी तत्कालीन

---

१ अरबी भाषा की कौतूहलप्रधान पुस्तक।

२ उर्दू गद्य की एक प्रारंभिक पुस्तक।

कृतियां खूब मनोरंजक हैं। लेखकों नें मनोरंजकता पैदा करने के लिए अपनी कहानियों को कौतूहल प्रधान बनाया या उन में हास्य रस की पुट दी। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपको वहां न मिलेगा। इसके कई कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि उस समय कहानी को साहित्य का अंग नहीं माना जाता था। कविता का साम्राज्य था। कहानियां लिखी नहीं जाती थीं, हां सुनाई जाती थीं और चूंकि सुनाने वालों के सामने उन के श्रोताओं की दिलचस्पी मुख्य ध्येय था, इसलिए वह अपनी कहानी अधिक से अधिक कौतूहल पूर्ण बनाते थे। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए तब कोई जगह नहीं थी। आज यदि हमें कहानी में कोई बात समझ न आए, तो हम दो पृष्ठ उलट कर उसे फिर पढ़ सकते हैं, तब ऐसी बात न थी। कहानी कहने वालों के सामने श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध बिठाए रखना आवश्यक था, इसलिए घटना के बाद घटना का वर्णन करके श्रोताओं के कौतूहल को बढ़ाए जाते थे। पहले क्या हुआ, यह सोचने का अवकाश उन्हें न होता। आगे क्या होगा इस की उत्सुकता बनी रहती। ज्यों ज्यों कहानी बढ़ती रहस्य और भी गहरा और भी जटिल होता जाता, यहां तक कि जब कहानी समाप्तहोती,लोग'वाह''वाह'कर उठते और ऐसी उत्तम कहानी 'घड़ने'के लिए सुनानेवालेकी प्रशंसा करत। बाद को जब कहानी लिखी जाने लगी तो उसका यह गुण वैसे का वैसा ही बना रहा।

हिन्दी में कहानी की सब से पहली पुस्तकें अपने अत्यन्त अपरिपक्व रूप में वैष्णवकाल, अर्थात् १६ वीं शताब्दी में गोकुलनाथकृत 'चौरासी वैष्णव वार्ता' तथा 'दो सौ वैष्णव

वार्ता' के नाम से मिलती हैं। तत्पश्चात् संवत् १६८० (विक्रमीय) में जटमल ने 'गोराबादल की कथा' की रचना की जिसका आधार एक ऐतिहासिक घटना थी। इसके बाद १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक गद्य में कोई पुस्तक नहीं मिलती। इसका यह तात्पर्य नहीं कि उस समय घटनाएं नहीं होती थीं, या कहानी सुनने सुनाने की रुचि न थी। कारण यह था कि लोग जो कुछ सुनाना चाहते थे, काव्य द्वारा सुनाना चाहते थे। 'प्रेम-मार्गी-सूफी-शाखा' के कवियों ने पद्य में ही कहानियां लिखीं। जायसी का 'पद्मावत' इसका उत्तम उदाहरण है। गद्य में कहानी न लिखे जाने का दूसरा कारण यह भी था कि उस समय आज की तरह छापेखाने की सुगमताएं न थीं, इसलिए कहानी अपने साहित्यिक रूप में न आ सकी। जो भी हो, १६ वीं १७ वीं शताब्दी के बाद १९ वीं शताब्दी में ही हिन्दी गद्य को कुछ उत्तेजना मिली।

हिन्दी गद्य के विकास का एक बड़ा कारण ब्रिटिश राज्य की स्थापना थी। अंग्रेज शासकों ने यह अनुभव किया कि भारतीय भाषाओं का ज्ञान उनके लिए अत्यावश्यक है। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना १७९१ में हो चुकी थी। इसी कालेज के कुछ अध्यापकों को हिन्दी गद्य में पुस्तकें लिखने के लिए प्रेरित किया गया। गद्य के विकास के परिणाम स्वरूप कहानी की कुछ पुस्तकों का आविर्भाव हुआ। इसी कालेज के पंडित लल्लूलाल जी ने न केवल प्रेमसागर ही लिखा अपितु तीन कहानी ग्रन्थों—बेतालपच्चीसी, सिंहासन-बत्तीसी, और माधोनल—की भी रचना की। ये तीनों संस्कृत

से अनूदित हैं। फोर्टविलियम कालेज के दूसरे अध्यापक श्री सदल मिश्र थे। ये भी आरम्भिक गद्य के प्रतिष्ठापकों में गिने जाते हैं। इन्होंने 'चन्द्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' नाम की कहानी की पुस्तक लिखी। यह भी संस्कृत से अनूदित है। इसी समय सैयद इंशा अल्लाह खां ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। मौलिक रचना है। इसकी भाषा सरल और हृदयग्राही है।

इन आरम्भिक रचनाओं के पश्चात् 'हरिश्चन्द्र युग' में संस्कृत से जो अनुवाद हुए, उन्हें देखकर एक बात का आभास अवश्य मिलेगा और वह यह कि वे सब के सब प्रायः अध्यात्म-विषयक थे। मनोरंजकता उनमें थी, पर उनका बड़ा गुण उनका अध्यात्म-विषयक होना था। यों भी, जैसा कि हमने कहा, प्राचीन कहानियां, घटनाओं के कहने, या मानव जीवन के रहस्यों पर प्रकाश डालने के लिये उतनी नहीं लिखी जाती थीं जितनी धर्म प्रचार के लिए। ब्राह्मण उपनिषद, महाभारत आदि में ऐसी ही कहानियां विद्यमान हैं। बाइबल में दृष्टान्तों और आख्यायिकाओं द्वारा ही धर्म के तत्त्व समझाये गये हैं। हिन्दी की आरम्भिक कहानियां भी ऐसी ही थीं। चाहे वे गद्य की हों या पद्य की।

कहानी को कहानी के लिए, मनोरंजकता के लिए, लिखने का श्रेय हिन्दी में बाबू देवकीनन्दन खत्री को है और इस उद्देश्य के लिए पुराने कहानी कहने वालों की भांति उन्होंने अपनी रचनाओं को कौतूहल प्रधान बनाया। 'चन्द्रकान्ता', भूतनाथ', 'वीरेन्द्र वीर' और 'कुसुम कुमारी' आदि उपन्यास

इसी तरह के हैं और इतने दिलचस्प, कि आज भी चाव से पढ़े जाते हैं।

आधुनिक कहानी

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है। चन्द्रकान्ता सन्तति तथा इसी प्रकार की कौतूहल-प्रधान कहानियां हर उम्र में नहीं पढ़ी जातीं। जीवन में एक समय आता है, जब सब कुछ सुनहला दिखाई देता है। कोई ग़म नहीं, दुःख नहीं, उत्तरदायित्व का बोझ नहीं, तब ऐसी चीजें पढ़ने में मन लगता है।

पर ज्यों ही हम, जीवन की यथार्थताओं के संघर्ष में आते हैं, स्वप्न जब हमारे स्वप्न नहीं रहते, तभी हम ऐसी कहानियों से ऊब उठते हैं। तब हम कोई ऐसी चीज़ चाहते हैं, जो हमारे सामने जीवन की यथार्थता को खोल कर रख दें, हमारे सुख दुःखों का दिग्दर्शन कराए, हमारी विपत्तियों में हमें सान्त्वना दे, हमारी कठिनाइयों में हमारा पथ प्रदर्शन करें; हमें जीवन को, मानव को, समझने में सहायता दे। साहित्य के जीवन में भी जिस समय वह कौतूहल-पूर्ण, मनोरंजनमात्र का या धर्म का पहलू लिए हुए, कहानियां लिखी गईं, तब जीवन-संघर्ष अपेक्षा-कृत कम जटिल था; आजीविका का प्रश्न भी आज ऐसा विकट न था; लोगों के पास समय भी काफी था, तब लोग बैठे धर्म-ज्ञान की चर्चा कर सकते थे, कौतूहल-पूर्ण कहानियां पढ़ और सुन सकते थे। पर आज, जब धर्म में आत्मा परमात्मा तक में लोगों की उतनी आस्था नहीं रही; जब जीवन-संघर्ष ने सपने देखने वाले युवक को

एक दम प्रौढ़ बना दिया है और आजीविका कमाने की चिन्ता ने उसके पास समय नहीं छोड़ा, यह आवश्यक था कि पुरानी कौतूहल-पूर्ण लम्बी-लम्बी कहानियों का स्थान छोटी भावपूर्ण, जीवन से मेल खाने वाली कहानियां लेतीं। अब तक हम कहानी को उसके व्यापक अर्थ में लेते रहे हैं जिसमें साधारण छोटी घटना से लेकर 'चन्द्रकान्ता सन्तति' तक भी कहानी है, पर यहां से छोटी कहानी नाम की एक नई चीज़ आती है, जो अपनी पृथक् कला रखने के साथ ही आज की आवश्यकताओं के अनुसार है।

"हमें यह मानने में संकोच न होना चाहिए कि छोटी छोटी कहानियां लिखने की यह कला हमने यूरोप से ली है। कम से कम इसका आज का विकसित रूप तो पश्चिम का ही है। यह माना कि हमारे यहां प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी कहानी थी, पर अनेक कारणों से जीवन की अन्य धाराओं की भांति साहित्य में भी हमारी प्रगति रुक गई। हमने प्राचीन से जौ भर इधर-उधर हटना भी निषिद्ध समझ लिया। साहित्य के लिये प्राचीनों ने जो मर्यादाएं, बांध दी थीं उनका उल्लंघन करना वर्जित था, अतएव काव्य और नाटक की भांति कथा में भी हम आगे न बढ़ सके। कोई बस्तु बहुत सुन्दर होने पर भी अरुचिकर हो जाती है, जब तक उस में कुछ नवीनता न लाई जाए। एक ही तरह का काव्य, एक ही भांति के नाटक पढ़ते पढ़ते आदमी थक जाता है और वह नई चीज चाहता है, चाहे वह उतनी सुन्दर और उत्कृष्ट न हो।

हमारे यहां या तो यह इच्छा उठी ही नहीं, या हमने उसे इतना कुचला कि जड़ीभूत हो गई। पश्चिम प्रगति करता रहा। उसे नवीनता की भूख थी और मर्यादाओं की बेड़ियों से चिढ़ ! जीवन के प्रत्येक विभाग में उसकी इस अस्थिरता की, असंतोष की बेड़ियों से मुक्त हो जाने की छाप लगी हुई है। साहित्य में भी उसने क्रान्ति मचा दी [१]शेक्सपियर के नाटक अनुपम हैं। पर आज के उन नाटकों का जनता के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। आज नाटक का उद्देश्य कुछ और है, आदर्श कुछ और है, विषय कुछ और है, शैली कुछ और है। कथा-साहित्य में विकास हुआ और उसके विषय में चाहे उतना बड़ा परिवर्तन न हुआ हो, पर शैली तो बिलकुल ही बदल गई। अलफलैला उस समय का आदर्श था, उसमें बहुरूपता थी, वैचित्र्य था, कौतूहल था, रोमांस था, पर उसमें जीवन की समस्यायें न थीं, मनोविज्ञान के रहस्य न थे, अनुभूतियों की इतनी प्रचुरता न थी, जीवन अपने सत्य रूप में इतना स्पस्ट न था।'

ऊपर का लम्बा उद्धरण हमने स्व० प्रेमचन्द के लेख से दिया है। हिन्दी साहित्य के महारथियों में वे ही पहले आदमी थे जिन्होंने इस सत्य को जाना और हिन्दी को आज की जरूरतों के अनुसार कहानियां दीं। उनसे पहले 'सरस्वती' तथा 'इन्दु में कुछ लेखकों की सुन्दर कहानियां निकलीं पर उनकी गिनती नहीं के बराबर है। श्री विश्वम्भरनाथ कौशिक श्री ज्वालादत्तशर्मा, श्री जिज्जा, राजा राधिकारमणसिंह तथा

---

१ अंग्रेजी भाषा का प्रख्यात नाटककार।

स्व० जयशंकर प्रसाद की कोई २ कहानी मिलती है, पर स्व० प्रेमचन्द ने उनसे बहुत पहले उर्दू में लिखना आरम्भ कर दिया था, यद्यपि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में वे १९१६ में आए। पढ़ने को जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, उन्होंने 'चन्द्रकान्ता-संतति' और 'फिसानाए आजाद' पढ़ा था पर उनके अन्दर सृजन करने की जो शक्ति तड़प रही थी वह अनुकरण मात्र से संतुष्ट न रह सकती थी। वर्त्तमान युग की जरूरतों को समझते हुए साहित्य के इस प्रौढ़ व्यक्ति के मन ही की चीज उन्होंने उसे देने का प्रयास किया।

वर्त्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। मनुष्य के लिए मनुष्य ही सब से विकट पहेली है। वह स्वयं अपनी समझ में नहीं आता। किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है, अपने ही मनोरहस्य खोला करता है। मानव-संस्कृति का विकास ही इसीलिये हुआ कि मनुष्य अपने आप को समझे। प्राचीन काल में धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियां मनुष्य को आत्मा और परमात्मा के झगड़ों में व्यस्त रखती थीं। धर्म और कर्म से पृथक् मान कर, अपने आप को समझने की प्रवृत्ति उनमें न थी, फिर अपने पड़ोसी को, समाज को समझने की तो बात ही दूर रही। पर आज का मनुष्य अपने आपको, अपने पड़ोसी को अपने समाज को समझने के लिए सतर्कता से प्रयत्न-शील है। इसलिये उसकी कहानियां मनोवैज्ञानिक-सत्य और जीवन की यथार्थ अनुभूतियों पर अवलम्बित हैं।

मनोवैज्ञानिक-सत्य क्या है ? इसके दो एक उदाहरण स्व० प्रेमचन्द ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका में दिये हैं ।

"साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुःखी होना मनोवैज्ञानिक-सत्य है"। इस आवेग में पिता के मनोवेशों को चित्रित करना आजकल के कहानीकार का उद्देश्य है ।

"बुरा आदमी भी बुरा नहीं होता। उसमें कहीं न कहीं अवश्य देवता छिपा हुआ होता है। यह मनोवैज्ञानिक-सत्य है।" उस देवता को खोल कर दिखा देना आधुनिक युग के कहानीकार का काम है ।

"विपत्ति पर विपत्ति पड़ने से मनुष्य कितना दलेर हो जाता है, यहां तक कि वह बड़े से बड़े संकट का सामना करने के लिये ताल ठोंक कर तैयार हो जाता है; उसकी सारी दुर्वासना भाग जाती है; उसके हृदय के किसी गुप्त स्थान में छिपे हुए जौहर निकल आते हैं और हमें चकित कर देते हैं, यह मनोवैज्ञानिक-सत्य है" आज का कहानीकार कल्पना-मात्र पर अपनी कहानी की भित्ति खड़ी न कर के किसी ऐसे ही मनोवैज्ञानिक-सत्य पर उसकी नींव रखेगा और कला के दूसरे उपकरणों की सहायता से उसमें प्राण प्रतिष्ठा करेगा, सजीवता लाएगा ।

मानव-जीवन में ऐसे बीसियों मनोवैज्ञानिक-सत्य हैं, एक घटना या दुर्घटना भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित करती हैं । कहानीकार यदि अपनी कहानी में इसको सफलता के साथ दिखा सके तो कहानी उच्च कोटि

की बनेगी। किसी समस्या का समावेश कहानी को उत्तम बनाने का सबसे बड़ा साधन है। नित्य नये दिन जीवन में ऐसी समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं और उससे पैदा होने वाला द्वन्द्व आख्यायिका को चार चाँद लगा देता है।

"न्याय-प्रिय जज को मालूम होता है कि उसके पुत्र ने किसी व्यक्ति की हत्या की है–वह उसे न्याय की वेदी पर बलिदान कर दे या अपने जीवन के सिद्धान्तों की हत्या कर डाले? कितना भीषण द्वन्द्व है! पश्चात्ताप ही ऐसे द्वन्द्वों का अखंड-स्रोत है। एक भाई ने अपने भाई की सम्पत्ति छल-कपट से अपहरण कर ली है, उसे गिड़गिड़ा कर और अवधि माँगते देख कर क्या उस क्रूर के मन में तनिक भी पश्चात्ताप न होगा? यदि ऐसा न हो तो वह मनुष्य नहीं।"

अब हम जरा उस घटना को लें, जिसका ज़िक्र हमने इस प्राक्कथन के आरम्भ में किया है। उस घटना को यदि वह शिकारी उसी तरह वर्णन कर देगा, तो वह घटना का एक वर्णन-मात्र ही रह जाएगा, कहानी न बनेगी। अब यदि उस घटना में किसी मनोवैज्ञानिक सत्य का समावेश कर दिया जाए––जब शिकारी उस हिंस्र पशु को मार लेता है, तो उसे मालूम होता है कि वह मादा है और उसके मरने के साथ उसके बच्चे भी मर गए हैं। तब अपने इस कृत्य पर उस दुर्दान्त व्यक्ति के मन में भी, मनुष्य होने के नाते, जो पश्चात्ताप होता है, यदि उसका ज़िक्र भी वह अपने साथियों से करे, तो वही घटना घटना-मात्र न रह जाएगी, उसमें काफी

कहानीपन आ जायगा और यदि आज का कोई कुशल कहानीकार उस पश्चात्ताप को लेकर कहानी लिखेगा और उस घटना का उस शिकारी के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा और जिस प्रकार उस घटना ने उसके जीवन के रुख को पलट दिया, उसका ज़िक्र करेगा तो वह एक बहुत सुन्दर कहानी बन जाएगी—मनोविज्ञान और यथार्थ-सत्य का पहलू लिए हुए।

कहानी की कला

पिछले सौ वर्षों में कहानी कला ने निश्चित रूप धारणकर लिया है। जिस प्रकार नाटक और उपन्यास की अपनी अपनी कला है, इसी प्रकार अब कहानी की भी अपनी निश्चित कला है। यह ठीक है कि सौ वर्ष पहले तो स्वयं यूरोप भी इस कला से अनभिज्ञ था। उच्च कोटि के सामाजिक, ऐतिहासिक तथा दार्शनिक उपन्यास लिखे जाते थे, छोटी कहानियों की ओर किसी का ध्यान नहीं था। हाँ भूतों और परियों की कहानियाँ लिखी जाती थीं, पर इसी एक शताब्दी में, बल्कि इससे भी कम समय में छोटी कहानी ने साहित्य के और सभी अंगों पर विजय प्राप्त कर ली है और स्व० प्रेमचन्द के कथनानुसार यह कहना अत्युक्ति नहीं कि जैसे किसी ज़माने में कविता ही साहित्यिक अभिव्यक्ति का व्यापक रूप था वैसे ही आज कहानी है और उसे यह गौरव प्राप्त हुआ है यूरोप के कितने ही महान कलाकारों के उर्वर मस्तिष्क और अथक परिश्रम के कारण। हिन्दी में भी यद्यपि पैंतीस छत्तीस वर्ष पहले आज की गल्प को कोई जानता भी न था, पर आज

कोई ही ऐसी पत्रिका होगी, जिसमें एक दो कहानियाँ न दी जाती हों। हिन्दी कहानी को एक दम अज्ञात स्थान से निकाल इतने ऊँचे शिखर पर पहुंचा देने का श्रेय स्व० प्रेमचन्द को है।

परिभाषा

छोटी कहानी क्या है? इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता कि साहित्यिक भावव्यंजना का यह सबसे ठीक और संतोष जनक साधन है।

एक-अंग्रेज लेखक की राय में 'कहानी एक पात्र के जीवन की वह महत्त्व-पूर्ण घटना है जिसकी संक्षेप में नाटकीय ढंग से अभिव्यंजना की गई हो।'

एक दूसरे लेखक का मत है कि--कहानी संकट या उलझन में पड़े हुए पात्रों का कलापूर्ण वर्णन है, जिसका कोई निश्चित परिणाम हो।

एक तीसरे आलोचक का कहना है कि--कहानी किसी घटना के सुन्दर ढंग पर वर्णन करने का नाम है।

इसी तरह विविध आलोचकों ने अपने अपने मतानुसार कहानी की विभिन्न परिभाषाएं की हैं। हिन्दी में भी कहानी क्या है? यह बताने का प्रयास किया गया है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का मत है कि--घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है और साहित्य के सभी अंगों के समान रस उसका आवश्यक गुण है।

दूसरे लेखकों ने कहानी की लम्बाई तथा दूसरे लक्षणों के विचार से उसकी सीमाएं निर्धारित करने का प्रयास किया है। हम कहानी को परिभाषाओं की जंजीरों में बाँधने के पक्ष में नहीं। समय समय पर कहानी की परिभाषाएं बदलतीं

रही हैं। कल जो कहानी लिखी जाती थी, आज नहीं लिखी जाती और कौन जानता है कि हम आज की कहानियों के अनुसार लघु-कथा की जो परिभाषा देते हैं वह कल के समाज को ग्राह्य होगी या नहीं ? आरम्भ में किसी घटना को उत्तम ढंग से वर्णन करने को ही कहानी कहते थे। आज तक घटना एक तरह की कहानियों का मुख्य अंग रही है और अब भी है, किन्तु स्व० प्रेमचन्द जी के शब्दों में गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। कितनी ही ऐसी कहानियां हैं, जिन में घटना इतनी प्रधान नहीं जितना चरित्र-चित्रण या वातावरण। तब कहानी को केवल घटनात्मक इकहरा चित्रण कह कर हम किस तरह सन्तुष्ट हो बैठ सकते हैं।

श्री इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है–वर्तमान युग की छोटी कहानी एक प्रकार की गद्य-कविता है, जो वास्तविक जीवन के आधार पर खड़ी होती है। जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उल्टा सीधा चलता रहता है। इस सुबृहत चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति के प्रदर्शित करने में ही कहानी की विशेषता है।

जोशी जी कवि हैं। वह कहानी को भी कविता के रूप में देखते हैं।

जोशी जी का कथन बहुत से अंशों में सत्य है। कल क्या होगा इसे कौन जानता है पर कहानी की आज की धारा को देख कर हम कह सकते हैं कि––

आधुनिक छोटी कहानी एक ऐसी रचना है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक-सत्य या मानव-जीवन अथवा समाज की किसी समस्या

पर रखा गया हो। और जो बिना इधर उधर भटके अपने ध्येय पर पहुँच जाए। और यदि उसमें कोई घटना वर्णित है तो उसका चित्रण इकहरा और रस पूर्ण हो।

कहानी की यह परिभाषा हमारे विचार में काफी व्यापक है। इनमें घटना प्रधान मनोवैज्ञानिक सत्य पर अवलम्बित या जीवन की किसी वास्तविक घटना पर आश्रित सब प्रकार की कहानियां आ सकती हैं, इसके साथ ही अच्छी कहानी के सबसे बड़े गुणों-रस (दिलचस्पी) और कथानक के गठन का निर्देश भी इसमें कर दिया गया है।

इस रस तथा दिलचस्पी को, जो एक विद्वान् समालोचक के मतानुसार कहानी की जान है, प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक उपकरणों की आवश्यकता है जिनका वर्णन संक्षिप्त में नीचे किया जाता है।

कहानी घटना प्रधान हो अथवा चरित्र प्रधान, कथानक अथवा प्लाट उसका आवश्यक अंग है। यह दूसरी बात है कि कहीं यह सारी कहानी पर छाया होता है और कहीं वातावरण अथवा चरित्रों के पर्दे में छिपा हुआ; किसी कहानी में वातावरण और चरित्र इसके सामने गौण रूप धारण कर इसके सहायक बनते हैं और कहीं यह स्वयं गौण हो उनका सहायक बन जाता है। किन्तु विचार प्रधान तथा जीवन के किसी दृश्य को लेकर लिखी गई कहानियों को छोड़ कर (अर्थात् उन कहानियों को छोड़ कर जिन में कथानक नहीं, वरन् विशाल जीवन का कोई दृश्य मात्र वर्णित है, जैसे श्री जैनेन्द्र के 'पढ़ाई' या 'जनता')

कथानक

शेष में कथानक के बिना पाठकों का मनोरंजन नहीं हो सकता। रही विचार प्रधान कहानियां, वे प्रत्येक पाठक के लिए होती भी नहीं। विद्वान् तथा मननशील पाठक ही उनसे लाभ उठा सकते हैं। प्लाट उनमें भी नहीं के बराबर होता है। श्री जैनेन्द्र की रानी महामाया, नारद आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। जीवन के किसी दृश्य को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों में भी घटना के नाम पर एक मध्य सी परिस्थिति होती है और उसी का यथार्थ चित्रण इन नाममात्र की कहानियों का गुण है। अन्तिम बिन्दु का वहां सर्वथा अभाव है।

कुछ लोग जो कथानक अथवा घटना को कहानी का मुख्य अंग मानते हैं इनको 'कहानी' का नाम देने के लिये तैयार नहीं। वे इन्हें कहानी और निबन्ध के बीच की चीज समझते हैं। कुछ भी हो, इन दो प्रकार की कहानियों को छोड़ कर शेष का 'कथानक' प्रधान अंग होता है।

यहाँ एक बात और याद रखनी चाहिए और वह यह कि घटना कथानक का पर्यायवाची शब्द नहीं, घटना को यदि बीज कहें तो कथानक फला फूला पौधा है, घटना यदि नींव है तो कथानक उस पर निर्मित भव्य प्रासाद है।

कथानक का महत्त्व

शरीर के लिए जिस प्रकार ढांचे की आवश्यकता है उसी प्रकार कहानी के लिए कथानक की। जबड़े की हड्डियां न हों तो कितना भी मांस चेहरे को सुन्दर नहीं बना सकता। यही हाल दूसरे अंगों का है। विचार प्रधान अथवा दूसरी तरह की घटना-

रहित कहानियां किसी न किसी सूरत में कथानक रखती हैं, चाहे वह दृश्य अथवा परिस्थिति जिस पर कथानक निर्मित है, कितनी भी छोटी अथवा अप्रत्यक्ष क्यों न हो। किन्तु जैसे एक पहलवान के शरीर का ढांचा एक नाचने वाले के ढांचे से अलग होता है, इसी तरह कथानक भी लेखक की इच्छा के अनुसार विभिन्न रूप धारण करते हैं। उसी परिस्थिति से एक लेखक विचार प्रधान कहानी बना देता है, दूसरा घटना प्रधान, तीसरा चरित्र प्रधान और चौथा वातावरण प्रधान। कथानक के साथ दूसरे उपकरण मिल कर लेखक की इच्छा के अनुसार कहानी तैयार करते हैं। स्मरण रखने योग्य बात यही है कि चाहे कहानी कैसी ही हो कथानक उसका एक मुख्य अंग है। एक समालोचक ने कहा है—यदि सुनाने के लिए नहीं तो शेष रहा ही क्या ?

कथानक का गठन

आधुनिक कहानी का सब से बड़ा गुण उसके कथानक का गठन है जैसे हमने उपर लिखा, वह सीधी अपने ध्येय की ओर जाती है, इधर उधर नहीं भटकती, रास्ते में किसी प्रकार की रुकावट, अनावश्यक विस्तार, अप्रासंगिक बात-चीत सब उसे असह्य हैं। पंक्ति, के साथ पंक्ति, पैरे के साथ पैरा, ऐसे गठा होना चाहिए जैसे जंजीर की कड़ियां। एक पंक्ति उस में से निकाली न जा सके, एक बढ़ाई न जा सके। और प्रवाह उस में नदी का सा होना चाहिए, बस पाठक शुरू करे कि बहता ही चला जाए। कहानी में यह गुण प्लाट के

गठन से आता है और प्लाट का गठन कहानी का आरम्भ मध्य और अन्त पर निर्भर है। यहां दो चार शब्द इन तीनों के सम्बन्ध में कह देने ज़रूरी हैं।

इस से पहले किया आरम्भ के सम्बन्ध में कुछ कहा जाए, एक और उपकरण के सिलसिले में, जिस का सम्बन्ध आरम्भ से है, दो बातें कहनी हम जरूरी समझते हैं और वह है कहानी का 'शीर्षक'।

शीर्षक

दिलचस्पी के विचार से जिसे स्व० प्रेमचन्द ने कहानी की आत्मा कहा है, कहानी का शीर्षक काफी महत्त्व रखता है, आकर्षक सुन्दर शीर्षक पाठक को एक साधारण कोटि की कहानी पढ़ने के लिये विवश कर सकता है और फुसफुसा तथा कला-हीन शीर्षक एक सुन्दर कहानी को भी पाठक के अध्ययन से वंचित रख सकता है।

आधुनिक काल में उपन्यास की अपेक्षा कहानी के इतनी उन्नति करने का कारण समयाभाव है और इसी समयाभाव के कारण कहानी का शीर्षक और भी महत्त्व रखता है। साहित्य में दिलचस्पी रखने वाला एक बेकार व्यक्ति शीर्षक की इतनी परवाह न किए बिना भी केवल समय काटने के लिए कहानी पढ़ सकता है, पर जरा उस व्यक्ति की कल्पना कीजिए जिसके पास उतना समय नहीं, वह तो वही कहानी पढ़ेगा जो उसे पहली दृष्टि में आकृष्ट कर ले। और यही शीर्षक महत्त्व प्राप्त करता है।

कहानी का शीर्षक उत्तेजक, आकर्षक, मनोरंजक, सांकेतिक तथा प्रेरक होना चाहिए ऐसा कि जिसे देखते ही कम से कम पाठक कहानी को पढ़ना शुरू कर दे फिर कहानी के आरंभपर है, कि वह उसे पकड़ ले, विकास पर है, कि उसे अपने साथ बहा ले जाए, और अन्त पर है, कि उसे मन्त्र-मुग्ध बिठा दे।

भाषण-दाताओं के लिए एक पुराना आदेश प्रसिद्ध है--

उठो, भाषण दो और बैठ जाओ। कहानी के

आरम्भ आरम्भ, मध्य और अन्त के लिए भी यह तीनों शब्द उपयुक्त हैं।

'उठो' जिस चुस्ती और स्फूर्ति का द्योतक है वही कहानी के आरम्भ में होनी चाहिए। कहानी की पहली पंक्तियाँ ही ऐसी हों जो पाठक को पकड़ लें, उन्हें पढ़ते ही पाठक अपने दिल में कहानी के सम्बन्ध में कुछ आशाऐं बना लें, कुछ प्रश्न उसके मनमें पैदा हो जाए, कुछ तस्बीरें उसके सामनें खिंच जाएं।

आरम्भ की पंक्तियाँ ऐसी हों जो बहुत थोड़े में बहुत कुछ कह जाएं, जो पाठक के कौतूहल को उसकी उत्सुकता को जगा दें। इसके साथ पहली पंक्तियों से ही पाठक को पता लग जाना चाहिए कि वह कैसी कहानी पढ़ने जा रहा है। उसकी कहानी विचार प्रधान है, या घटना प्रधान; देहात से सम्बन्ध रखती है या नगर के जीवन से; काल्पनिक है या यथार्थ का चित्र! यदि पहिले पैरे ने उसे आकृष्ट न किया तो व्यस्त पाठक के लिए यह कठिन है कि वह आगे बढ़े। वह पृष्ट पलटनें लगेगा।

और जब एक बार पाठक कहानी आरम्भ कर ले, और आरम्भ की पंक्तियां उसे पकड़ लें तो उसकी

मध्य या, विकास मनोरंजकता को बनाए रखने का कर्तव्य कहानी के मध्यभाग, अथवा विकास पर है। भाषण-कर्ता से जो कहा गया है–भाषण दो, तो उसका अभिप्राय यह है कि वह बिना किसी लम्बी भूमिका के, बिना इधर उधर भटके, व्यर्थ के हेर-फेर को छोड़कर सीधा अपने विशेष के सम्बन्ध में बोले। कहानी के विकास में कहानी-लेखक का भी यही आदर्श होना चाहिए। उसे सतर्क रहना चाहिए कि उसकी आरम्भ की पंक्तियां जो दिलचस्पी अंकुरित कर चुकी हैं, वह अनुकूल आहार न पाने से मुरझा न जाए।

मध्य भाग का पहला गुण उसका प्रवाह है। यह प्रवाह सब से पहले वर्णन शैली की सुन्दरता से आता है।

प्रवाह वर्णन शैली के कई अवयव हैं। भाषा की चुस्ती, उपयुक्त शब्दों तथा मुहावरों का उपयुक्त स्थान पर प्रयोग, वाक्यों का विन्यास, ठीक हिस्सों में कथानक की विभक्ति, गठन, अप्रासंगिक शब्दों तथा वाक्यों का बहिष्कार और गहरी अनुभूति–ये सब वर्णन शैली को वर्णन-शैली बनाते हैं और शैली ही वह चीज है जिससे लेखक लेखक में अन्तर का पता चलता है।

विकास में जिस दूसरी बात से खूबी पैदा होती है, वह संभाषण है। वास्तव में यह वर्णन-शैली का ही एक

संभाषण अंग है। संभाषण से कहानी में चुस्ती और नवीनता पैदा होती है। यदि कहानी एक ही तरह चली जाए तो

हो सकता है कि पाठक ऊब जाए। उपयुक्त अवसर पर चन्द वाक्य कथानक में जान पैदा कर देते हैं। संभाषण सजीव, संक्षिप्त और प्रासंगिक होने चाहिएं। कुछ कहानी लेखक तो संभाषण ही से कहानी का आरम्भ, विकास, चरित्र-चित्रण तथा अन्त करते हैं। हिन्दी में 'कौशिक' जी की कहानियां अपने संभाषण के लिये प्रसिद्ध हैं। प्रेमचन्द की कहानी में संभाषण अत्यन्त सजीव होते हैं। आधुनिक कहानी में संभाषण को काफी ऊँचा दर्ज़ा प्राप्त है।

चरित्र-चित्रण

इसके अतिरिक्त एक और गुण भी है जो साधारणतया कहानी के इस विकास में ही पैदा किया जाता है और वह है चरित्र-चित्रण। केवल घटना प्रधान कहानियों को छोड़ कर जीवन की अनुभूतियों पर निर्भर शेष सब कहानियों की कसौटी चरित्र-चित्रण ही है। बहुत सी कहानियाँ ऐसी हैं जो अपने उत्तम चरित्र-चित्रण के कारण आज तक प्रसिद्ध हैं। ऐसे लेखक भी कम नहीं जिनका नाम अब तक केवल इसी लिए अमर है कि उन्होंने कुछ अमर चरित्र खींचे। उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द का कमाल, सीधी-सरल भाषा लिखने, अलंकारों और उपमाओं का उचित प्रयोग करने में उतना नहीं, जितना होरी, सूरदास, प्रेम शंकर, ज्ञान-शंकर ऐसे चरित्र पेश करने में है और यदि साहित्य में उनका नाम अमर रहा तो यह इन्हीं चरित्रों के कारण होगा।

चरित्र-चित्रण तभी सफल कहा जा सकता है जब लेखक अपनी इच्छा के अनुसार पाठकों के मन में किसी पात्र के प्रति सहानुभूति, प्रेम तथा उपेक्षा पैदा कर सके, स्मृति-पट से मिटाए न मिटे।

वातावरण

वर्णन-शैली का एक गुण वातावरण पैदा करना भी है। शब्द-योजना, वाक्य-विन्यास और वर्णन के ढंग से वातावरण पैदा किया जाता है। कुछ कहानियां वातावरण-प्रधान होती हैं। उनमें लेखक ऐसा वातावरण पैदा कर देते हैं कि पाठक अपने आपको भूलकर उनमें गुम हो जाता है। रस से वातावरण कुछ भिन्न है। कहानी को पढ़ते-पढ़ते किसी घटना, स्थान, अथवा दृश्य का वर्णन लेखक इस तरह करता है कि पाठक पर आतंक छा जाता है, या उसका हृदय धड़कने लगता है, या उसे रोमांच हो आता है और उसे भूल जाता है कि वह कुछ पढ़ रहा है; ज्ञान किसी चीज़ का उसे नहीं रहता और कहानी का वातावरण उसकी नस नस पर भी छा जाता है। रस महसूस करने की, आनन्द उठाने की चीज़ है और रस में ज्ञान ज़रूरी है। वातावरण का गुण विस्मृति है। मरने के बाद अशान्त रहने वाली आत्माओं की कहानियों में खून, डाके और चोरी की दास्तानों में यथार्थता से दूर, [1]रोमांस (Romnace) की कथाओं में प्रायः वातावरण की प्रधानता होती है।

अन्तिम बिन्दु

अब रहा दिलचस्पी का क्षण-प्रतिक्षण बढ़ते जाना–यह बात कहानी में जिन उपकरणों की सहायता से पैदा की जाती है उनमें पहला स्थान 'कथानक की अनिश्चित धारा' और 'अन्तिम बिन्दु' को प्राप्त है। कथानक जिस स्थल में अपने चरमोत्कर्ष पर होता है, उसे 'अन्तिम बिन्दु' कहते हैं। कथानक की दिलचस्पी

१ काल्पनिक आख्यायिका।

के लिए यह आवश्यक है कि अन्तिम बिन्दु अन्त के समीप हो, क्योंकि अन्तिम बिन्दु के बाद दिलचस्पी घटनी आरम्भ हो जाती है। आरम्भ के बाद अंतिम बिंदु तक पाठक की उत्सुकता, उसकी अनिश्चितावस्था बनी रहनी चाहिए। आगे क्या होगा, आगे क्या होगा, ऐसा ही उसका मन सोचता रहे, कि अन्त आ जाए।

अन्त

कहानी का अन्त उतना ही महत्त्व रखता है, जितना कि मध्य तथा आरम्भ। यदि आरंभ ठीक तथा स्वाभाविक है, मध्य या विकास भी संतोषजनक है, पर अन्त सर्वथा अस्वाभाविक है, तो पाठक असंतुष्ट हो पुस्तक पटक देगा। इसलिए आवश्यक है कि अत्यन्त अप्रत्याशित होते हुए भी कहानी का अन्त स्वाभाविक हो, जीवन से मेल खाए, सम्भाव्य हो, असम्भव न हो। जिसे पढ़ने के बाद पाठक यह न कहे कि ऐसा हो ही नहीं सकता, बल्कि उसका मन कहे कि ऐसा हो सकता है।

अन्त पर जाकर पाठक को सन्तोष मिलना चाहिए। उसे महसूस होना चाहिए कि कहानी पर उसने जो इतना समय लगाया है, वह व्यर्थ नहीं गया। यदि कहानी हास्य-रस की है तो पाठक का हृदय अन्त पर कहकहा मार उठे; दुःख की है तो रो उठे, विस्मयजनक है तो आश्चर्यान्वित रह जाए; लोमहर्षक है तो उसे रोमांच आ जाए।

कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जो अपने अन्त के कारण पाठक के मन में अंकित हो जाती हैं। स्व० प्रेमचन्द जी की कहानियां–शतरंज के खिलाड़ी, बालक, गुल्ली-डंडा, नशा रकिस

संपादक ऐसी ही कहानियां हैं, जो अन्त में दी गई एक या दो पंक्तियों के कारण ही पाठक के स्मृति-पट पर अमिट छाप स्थापित कर जाती हैं।

लम्बाई

अंग्रेजी साहित्य के आरम्भिक काल के एक प्रसिद्ध कहानीकार ने कहानी की एक बड़ी ही अपूर्ण परिभाषा करते हुये कहा था—कहानी उस चीज को कहते हैं जो आधे घंटे से लेकर डेढ़ घंटे तक आसानी से पढ़ी जा सके।

आधुनिक युग के एक महान अंग्रेज लेखक ने अभी एक जगह कहानी की परिभाषा देते हुये उसे ऐसी ही सीमाओं में बाँधने का प्रयास किया है—छोटी कहानी एक कल्पित रचना है जो एक घंटे के अन्दर पढ़ी जा सके, पढ़ने में दिलचस्प हो और उसमें प्रवाह काफी हो।

किन्तु कहानी को किसी भी ऐसी सीमा में बांधा नहीं जा सकता। साधारण अच्छी कहानी के लिये ऐसी सीमा चाहे निर्धारित कर दी जाए, पर इसे नियम नहीं बनाया जा सकता। बंगाल के प्रसिद्ध कलाकार शरत बाबू की कुछ कहानियां सुमति, बिन्दो का लड़का, बड़ी दीदी काफी लम्बी हैं, स्व० प्रेमचन्द की कहानियां-बेटों वाली विधवा, सोहाग का शव, डामुल का कैदी, फातिहा बड़ी कहानियाँ हैं. जैनेन्द्र जी की स्पर्धा तथा फांसी भी लम्बाई में कम नहीं।

कहानी की कसौटी लम्बाई नहीं वरन् कथानक का गठन तथा लक्ष्य का सीधा रहना है। यदि कहानी आरम्भ से अन्त

तक, बिना इधर-उधर भटके, पात्र के जीवन की किसी घटना का इकहरा चित्रण, बिना मनोरंजकता की हत्या किए, पेश करती है, तो चाहे वह १०० पृष्ठ तक की भी क्यों न हो, वह लघुकथा है, अन्यथा नहीं।

इससे पहले कि 'कहानी और उपन्यास में जो अन्तर है' उसके सम्बन्ध में कुछ लिखा जाए यहाँ हम एक बात स्पष्ट कह देना चाहते हैं। ऊपर अच्छी कहानी के जो गुण अथवा लक्षण दिए गए हैं, यह आवश्यक नहीं कि एक ही कहानी में वे सब पाए जाएं। वे ऐसे उपकरण हैं जिनकी सहायता से कहानी-लेखक अपनी रचना को सुन्दर बनाता है। यह सब इसकी इच्छा और कुशलता पर निर्भर है कि वह किस कहानी में किस उपकरण की सहायता लेता है। कुछ कहानियां घटना-प्रधान, कुछ वातावरण-प्रधान, और कुछ चरित्र-प्रधान होती हैं और कुछ केवल इस लिए सुन्दर होती हैं कि उनकी भाषा बड़ी ओजमयी, सुन्दर और लालित्य-पूर्ण होती है। एक से अधिक उपकरणों की सहायता से अपनी कहानी में एक साथ कई गुण पैदा कर देना, अत्यन्त निपुण कलाकारों का ही काम है।

कहानी और उपन्यास

कुछ लोग यह समझ बैठे हैं कि कहानी उपन्यास का संक्षिप्त रूप है, अथवा उपन्यास का ढांचा है। यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है।

कहानी-लेखक अपनी कहानी का आधार एक घटना

अथवा कुछ घटनाओं पर रखता है। पर उपन्यास में ऐसी बीसियों घटनायें, केवल आकस्मिक अथवा आनुषंगिक रूप से आ सकती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि एक कहानी और एकउपन्यास का एक ही 'उद्देश्य' नहीं हो सकता। जिस प्रकार विविध विटपों से विभूषित उद्यान और एकांत में खड़ा अकेला पेड़ एक धरती से अपनी खुराक लेते हैं, पर दोनों में विशाल अन्तर है, इसी प्रकार एक ही उद्देश्य से पलने वाले उपन्यास और कहानी में भी भारी भिन्नता है।

एक उदाहरण देकर हम अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

कोई व्यक्ति ऐसे विद्वान् वैद्य का चरित्र-चित्रण करना चाहता है जो अपने काम में निपुणता रखता है और जिस के हाथ में परमात्मा ने नीरोग करने की शक्ति और मस्तिष्क में प्रखर बुद्धि दी है, किन्तु जन्म-जात उसका लोभ उसके मार्ग की बाधा बन जाता है और इस लिये वह लोगों का इतना उपकार नहीं कर सकता।

अब यदि वह व्यक्ति उपन्यास लेखक है, तो वह अपने उपन्यास को तब से आरंभ कर सकता है, जब कि भावी वैद्य अभी बच्चा ही है। वह उसके पिता का चरित्र भी खींच सकता है, जो लोभी, कंजूस और मितव्ययी है और चाहता है कि ये 'गुण' उसके पुत्र में भी पैदा हो जायँ; पाठशाला, स्कूल और कालिज में उसकी आदतों का वर्णन कर सकता है और उसके व्यवसाय के आरम्भिक काल का भी जिक्र कर सकता है। उसी

उपन्यास में वह उसके प्रेम की उपकहानी बयान कर सकता है; बता सकता है कि किस प्रकार धन की ख़ातिर उसने उस प्रेम को ठुकरा दिया। वह उसके एक भाई का चरित्र खींच सकता है, जो उसके विपरीत उदाराशय है, उस उदाराशय भाई के प्रति उसकी उपेक्षा दिखा सकता है और यदि चाहता है कि अन्त में पाठकों के हृदय में उसके लिये सहानुभूति पैदा हो जाए तो कोई ऐसी घटना दे सकता है, जिससे उसके हृदय को ठोकर लगे और वह प्रायश्चित्त करे और उस जीवन की झाँकी भी दिखा सकता है जब कि उसमें इतना अन्तर आ गया है कि रुपया उसके लिए महत्त्व की चीज नहीं रहा और वह घूम घूम कर देहात में दवाई बांटता है।

पर कहानी लेखक तो ऐसा नहीं कर सकता। उसे उस वैद्य के जीवन की एक ही घटना, केवल एक ही अवस्था लेनी है और उसी का कला-पूर्ण वर्णन करके उसके चरित्र को, उसके विचारों को पाठकों के सामने रखना है। और इसी में पाठक को कुछ क्षणों के लिए अपना आप भूला देना है।

इस सूरत में सम्भवत: वह वहां से आरम्भ करेगा, जब उक्त वैद्य को किसी पार्टी में सम्मिलित होने का निमन्त्रण आता है और बताएगा कि किस प्रकार वैद्य को सोसाइटी में ऊँचा दर्जा प्राप्त है और किस प्रकार उसकी ख्याति उसके नगर की सीमाओं को पार करके प्रांत भर में फैल चुकी है। उस सभा में जाने के लिये वह बहुत उत्सुक है, क्योंकि वहाँ एक ऐसे लखपति से उसका परिचय होने की सम्भावना है, जिस

का रोग असाध्य हो गया है और उसके एक मित्र ने उसे उससे मिलाने को कहा भी है। तब उस शाम को, जब वह उस सभा के लिए तैयार होकर जाने लगता है, एक गरीब अहीरन अपने मरणासन्न इकलौते बच्चे को गोद में लिए उसे दिखाने आती है और उससे दया की भीख माँगती है......
....

इस सरल सी घटना में उतना ही नाटक, कौतूहल-उत्सुकता, विस्मृति पैदा की जा सकती है जितनी एक बड़े सहस्र पृष्ठों पर बिखरे हुए उपन्यास में। आवश्यकता केवल लेखक के उर्वर मस्तिष्क की है।

उपन्यास में कई नस्लों, देशों, द्वीपों, महाद्वीपों का वर्णन बिना उपन्यास की सीमाओं का उल्लंघन किए, किया जा सकता है। बीसियों पात्र एक साथ वहां आ सकते हैं—जैसे स्व० प्रेमचन्द की रंगभूमि तथा प्रेमाश्रम में! कहानी में यह निबिड़ता नहीं चलती। कहानी और उपन्यास में जो अन्तर है उसे स्व० प्रेमचन्द ने बड़ी सुन्दरता से एक जगह दिखाया है।

"गल्प एक रचना है जिससे जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव का पुष्टिकरण करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा बृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। न उपन्यास की भांति उसमें सभी रसों का सम्मिश्रण होता है वह रमणीक

उद्यान नहीं, जिसमें भांति भांति के फूल, बेल बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

हिन्दी में आज सब तहर की कहानियां लिखी जाती हैं। हमने इस संग्रह में जो कहानियां इकट्ठी की हैं वे इस विचार से नहीं रखीं कि हिन्दी में सबसे अच्छी यही कहानियाँ हैं। राष्ट्र-भाषा के विशाल क्षेत्र में इन से अच्छी अनेकों कहानियां मिल सकती हैं। हमारा उद्देश्य उन धाराओं का दिग्दर्शन कराना है जिनमें, हिन्दी-कहानी-साहित्य बह रहा है और हम विनय-पूर्ण-अभिमान के साथ कह सकते हैं कि हमने यह प्रतिनिधि संग्रह उपस्थित करने का प्रयास किया है।

सम्पादक

स्व० प्रेमचन्द

'आधुनिक हिन्दी कहानी के जन्म दाता' यदि हम प्रेमचन्द को कहें तो उसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। स्व० प्रेमचन्द के पहले कहानी अपने प्राचीन जीर्ण शीर्ण आवरण में लिपटी पड़ी थी—विस्मृति के अन्धकार में छिपी और मृत प्राय! प्रेमचन्द ने उसे नव-जीवन प्रदान कर, नूतन पोशाक में आवृत करके नए रूप से जनता के सामने रखा।

प्रेमचन्द की कहानियां, सरस, भावपूर्ण और मानव-जीवन की गहरी अनुभूतियों पर अवलम्बित होती हैं। आपको उनमें कोई न कोई मनोवैज्ञानिक सत्य, जीवन का कोई न कोई यथार्थ चित्र, समाज की कोई न कोई समस्या मिलेगी। मनोविज्ञान के विषय में उनका गहरा अध्ययन था। उनकी कहानियां पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है, जैसे हम अपने आप को पढ़ रहे हैं। शैली सुन्दर, भाषा चुस्त, मुहावरेदार और लालित्यमयी--जो कुछ लिखते उसका जीता जागता चित्र सामने खींच देते। देहातियों की दयनीय दशा, उनकी कठिन परिस्थितियों, उनकी विकट समस्याओं का जो दिग्दर्शन हमें प्रेमचन्द के यहां मिलता है, कहीं नहीं मिलता। यदि हम उन्हें देहातियों का कहानीकार कहें तो अनुचित न होगा। देहात में उनकी आत्मा बसती थी कदाचित् इसलिए कि उन्होंने अपना बाल्यकाल देहात में ही व्यतीत किया।

मढ़वा नाम के ग्राम में काशी से कोई तीन चार मील की दूरी पर १८९० में प्रेमचन्द ने जन्म लिया। उनका असली नाम धनपतराय था। सब से पहले उन्होंने कानपुर की प्रसिद्ध उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' में द० र० के नाम से लिखना आरम्भ किया। फिर कई कारणों से यह नाम छोड़, नव्वाबराय के नाम से लिखने लगे, और

इस नाम से उनका एक कहानी संग्रह भी छपा। फिर कई कारणों से उन्हें यह नाम भी त्याग देना पड़ा। वास्तव में उनके प्रेममय हृदय के लिए यह नाम उपयुक्त भी न था। तब वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। और दिनों में ही यह नाम भारत भर में प्रसिद्ध हो गया। १९१६ में उनकी पहली हिन्दी कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई और इसके बाद तो उनकी मंजी हुई भाषा शैली के प्रवाह समाज की एक साधारण घटना को लेकर चित्रण करने में उनकी सफलता ने सब के मन मोह लिए। भाषा के सम्बन्ध में उन के विचार थे--कि शब्द किसी भाषा से भी क्यों न लिया जाए, ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि विचार क्रम और शैली का प्रवाह न टूटने पाए।

स्व० प्रेमचन्द ने लग-भग बारह उपन्यास और तीन सौ कहानियां लिखीं, गोदान उनका अन्तिम उपन्यास है। अपनी जीवन-सन्ध्या में वे सिनेमा की ओर भी झुके थे, पर उनकी स्वतन्त्र-आत्मा ने वहां बंदी होना पसन्द न किया। १९३६ में केवल ४६ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

'गुल्ली-डंडा' उनकी सर्वोत्तम कहानियों में से है। इतनी छोटी सी घटना पर ऐसी उत्तम कहानी लिखना प्रेमचन्द ही का काम था--कहानी का अन्तिम वाक्य--यह पद पाकर मैं केवल उसकी दया के योग्य हूं--वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ--सदैव कानों में गूंजता रहता है।

गुल्ली—डंडा

हमारे अंग्रेजीदाँ दोस्त मानें या न मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। अब भी, जब कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूँ, तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लान की जरूरत, न कोर्ट की, न नैट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काटकर गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गये, तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब यह है कि उसके सामान महँगे होते हैं जब तक कम-से-कम एक सैकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकता। यहाँ गुल्ली-डंडा है, बिना हर्र-फिटकरी के चोखा रंग देता है, पर हम अंग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गई है। हमारे स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल

खेलने की फीस ली जाती है, किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खेलायें, जो बिना दाम कौड़ी के खेले जाते हैं। अंग्रेजी खेल उनके लिए हैं, जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो ठीक है, गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है। तो क्या क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टांग टूट जाने का भय नहीं रहता। अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी हैं, जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह तो अपनी अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सब से मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियां काटना और गुल्ली-डंडे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खेलाड़ियों के जमघटे, वह पदना और पदाना, वह लड़ाई-झगड़े, वह सरल-स्वभाव जिसमें छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिल्कुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोंचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुञ्जाइश ही न थी, उसी वक्त भूलेगा जब. . .जब. . .। घर वाले बिगड़ रहें हैं, पिता जी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं। अम्माँ की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचार-धारा में मेरा अन्धकारमय-भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूँ, कि पदाने में मस्त हूँ, न नहाने की सुधि है, न खाने की। गुल्ली है तो जरा सी, पर उसमें दुनियाँ भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझसे दो तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लम्बा, बन्दरों की सी लम्बी-लम्बी पतली-पतली उँगलियाँ, बन्दरों ही की सी चपलता, वही झल्लाहट। गुल्ली कैसी हो, उस पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीडों पर लपकती है। मालूम नहीं उसके माँ-बाप थे या नहीं, कहाँ रहता था, क्या खाता था, पर था हमारी गुल्ली-क्लब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ जाए, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे।

एक दिन मैं और गया दोनों ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था मैं पद रहा था, मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का भी अखरता है। मैंने गला छुड़ाने के लिए वे सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया दाव लिए बगैर मेरा पिण्ड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ।

गया ने मुझे दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तानकर बोला—मेरा दाव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बन के, पदने की बेर क्यों भागे जाते हो?

'तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन भर पदता रहूं?'

'हाँ तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा।'

'न खाने जाऊं न पीने जाऊं ?'

'हां ! मेरा दाव दिए बिना नहीं जा सकते ।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूं ?'

हां, मेरे गुलाम हो।'

मैं घर जाता हूं, देखूँ मेरा क्या कर लेते हो ।'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है । दाव दिया है, दाब लेंगे ।'

'अच्छा, कल मैंने तुम्हें अमरूद खिलाया था । वह लौट दो ।'

'वह तो पेट में चला गया ।'

'निकालो पेट से । तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद ?'

'अमरूद तुमने दिया, तब मैंने खाया । मैं तुमसे माँगने न गया था ।'

'जब तक अमरूद न दोगे, मैं दाव न दूंगा ।'

मैं समझाता था, न्याय मेरी ओर है । आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही अमरूद खिलाया होगा । कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वर्थ के लिये ही देते हैं। जब गया ने मेरा अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दाव लेने का क्या अधिकार है । रिश्वत लेकर तो लोग खून तक पचा जाते हैं। यह मेरा अमरूद यों ही हजम कर जायगा ? अमरूद पैसे के पांच वाले थे, जो गया के बाप को भी नसीब न होंगे । यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा—मेरा दाव देकर जाओ, मैं अमरूद नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था। वह मुझे जाने न देता था। मैंने गाली दी, उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली ही नहीं दो एक चाँटे भी जमा दिये। मैंने उसे दाँत काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डंडा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरंत आँसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हंसता हुआ घर पहुंचा। मैं थानेदार का लड़का, एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ, लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

(२)

उन्हीं दिनों पिता जी का वहाँ से तबादला हो गय। नई दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछुड़ जाने का बिलकुल दुःख न हुआ। पिता जी दुःखी थे, यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्माँ जी दुःखी थीं, यहाँ सब चीजें सस्ती थीं, और मुहल्ले की स्त्रियों से घराव सा हो गया था, लेकिन मैं मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से जीट उड़ा रहा था, वहाँ ऐसे घर थोड़े ही होते हैं। ऐसे-ऐसे ऊंचे घर हैं कि आसमान से बातें करते हैं। वहाँ के अंग्रेजी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों को पीटे, तो उसे जेल हो जाय। मेरे मित्रों की फैली हुई आँखें और चकित-मुद्रा

बतला रही थीं, कि मैं उनकी नजरों में कितना ऊंचा उठ गया हूं। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है जिसे हम जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे तुम भाग्यवान् हो भाई, जाओ, हमें इसी ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गए। मैंने इन्जीनियरी पास की और उस जिले का दौरा करता हुआ उसी कस्बे में पहुंचा और डाक बंगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बालस्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठाई और कस्बे की सैर करने निकला। आँखें किसी प्यासे पथिक की भांति बचपन के उन क्रीड़ा-स्थलों को देखने के लिये व्याकुल हो रही थीं, पर उस परिचित नाम के सिवा वहाँ और कुछ भी परिचित न था, जहाँ खंड़हर था, वहाँ पक्के मकान खड़े थे। जहाँ बरगद का पुराना पेड़ था, वहाँ अब एक सुन्दर बगीचा था। स्थान की काया-पलट हो गई थी, अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान होता, तो मैं उसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियाँ बाहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं, मगर वह दुनिया ही बदल गई थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपट कर रोऊं और कहूं, तुम मुझे भूल गई। मैं अब भी तुम्हारा रूप देखना चाहता हूं।

सहसा एक खुली हुई जगह में मैंने दो-तीन लड़कों को

गुल्ली-डंडा खेलते देखा। एक क्षण के लिए अपने को बिलकुल भूल गया। भूल गया कि मैं एक ऊंचा अफसर हूँ, साहबी ठाठ में, रोब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा--क्यों बेटे, यहां कोई गया नाम का आदमी रहता है ?

एक लड़के ने गुल्ली-डंडा समेट कर सहमे हुए स्वर में कहा--कौन गया ? गया चमार ?

मैंने योंही कहा--हाँ-हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो। शायद वही हो।

'हां, है तो।'

'जरा उसे बुला ला सकते हो' ?

लड़का दौड़ा गया और एक क्षण में एक पाँच हाथ के काले देव को साथ लिये आता दिखाई दिया। मैं दूर से ही पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ, पर कुछ सोचकर रह गया।

बोला--कहो गया मुझे पहचानते हो।

गया ने झुककर सलाम किया--हाँ मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं ? आप मजे में रहे ?

'बहुत मजे में। तुम अपनी कहो।'

'डिप्टी साहब का साईस हूँ।'

'मतई, मोहन, दुर्गा ये सब कहाँ हैं ? कुछ ख़बर है ?'

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन डाकिये हो गये हैं। आप ?'

'मैं तो जिले का इन्जीनियर हूँ।'

'सरकार तो पहले ही बड़े जहीन थे।'

'अब कभी गुल्ली-डंडा खेलते हो ?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आँखों से देखा--अब गुल्ली-डंडा क्या खेलूंगा सरकार, अब तो पेट के धंधे से छुट्टी नहीं मिलती।

'आओ, आज हम तुम खेलें। तुम पदाना हम पदेंगे। तुम्हारा एक दाव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।'

गया बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक बड़ा अफसर। हमारा और उसका क्या जोड़। बेचारा झेंप रहा था, लेकिन मुझे भी कुछ कम झेंप न थी; इसीलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था, बल्कि इसलिये कि लोग इस खेल को अजूबा समझदार इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी खासी भीड़ लग जाएगी। उस भीड़ में वह आनन्द कहां रहेगा, पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता था। आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से बहुत दूर एकान्त में जाकर खेलें। वहां कौन कोई देखने वाला बैठा होगा। मजे में खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस ले-लेकर खायँगे मैं गया को लेकर डाक बंगले पर आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किये हुये था, लेकिन गया इसे अभी मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था

शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था वही सोचने में मगन था।

मैंने पूछा—तुम्हें कभी हमारी याद आती थी गया? सच कहना।

गया झेंपते हुए बोला—मैं आपको क्या याद करता हजूर किस लायक हूं। भाग्य में आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती।

मैंने कुछ उदास होकर कहा—लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डंडा, जो तुमने तान कर जमाया था, याद है ना?

गया ने पछताते हुए कहा—वह लड़कपन था सरकार! उसकी याद न दिलाओ।

'वाह! वह मेरे जीवन की सब से रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान में पाता हूं, न धन-दौलत में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उसमें मन मीठा होता रहता है।'

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आए हैं। चारों तरफ़ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है, यहाँ आकर हम किसी समय कमल-पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झूमक बना कर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली जा रही है। मैं लपक कर एक पेड़ पर चढ़ गया और एक टहनी काट लाया चट-पट गुल्ली डंडा बन गया।

खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के सामने से निकल गई। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे आप-ही-आप जाकर बैठ जाती थी। वह दाहने बायें कहीं हो, गुल्ली उसकी हथेलियों में आ पहुँचती थी। जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो, नई गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली सभी उससे मिल जाती थीं। जैसे उसके हाथों में चुम्बक हो, जो गुल्लियों को खींच लेता हो। लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम नहीं रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह तरह की धाँधलियां कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डंडा खेले जाता था, हलाँकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती, तो मैं झपट कर उसे खुद उठा लेता और दोबारा टाँड लगाता। गया यह सारी बेकायदगियाँ देख रहा था, पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे क़ायदे कानून भूल गये थे। उसका निशाना कितना अचूक था। उसके हाथ से निकल कर गुल्ली टन से डण्डे में आकर लगती थी। उसके हाथ से छूट कर उसका काम था डण्डे में टकरा जाना, लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती नहीं। कभी दाहिने जाती है, कभी बायें कभी आगे कभी पीछे।

आध घण्टे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डण्डे में आ

लगी। मैंने धांधली की, गुल्ली डण्डे में नहीं लगी। बिलकुल पास से गई है, लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असन्तोष न प्रकट किया।

'न लगी होगी।'

'डण्डे में लगती तो क्या मैं बेइमानी करता ?'

'नहीं भैया, तुम भला बेइमानी करोगे।'

बचपन में मजाल थी, कि मैं ऐसा घपला करके ज़ीता बचंता। यही गया मेरी गरदन पर चढ़ बैठता, लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिये चला जाता था। गधा है सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डंडे में लगी और इतने जोर से लगी, जैसे बन्दूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धांधली करने का साहस मुझे इस समय भी न हो सका, लेकिन क्यों न एक बार सच को झूठ बताने की चेष्टा करूं मेरा हरज ही क्या है। मान गया, तो वाह-वाह, नहीं तो दो चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अंधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूंगा। फिर कौन दाँव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा--लग गई! टन से बोली।

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा---तुम ने लगते देखा ? मैंने तो नहीं देखा।

'टन से बोली है सरकार!'

'और जो किसी ईंट में लग गई हो ?'

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झूठलाना वैसे ही था, जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली डण्डे में जोर से लगते देखा था, लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हाँ किसी ईंट से ही लगी होगी। डण्डे में लगती, तो इतनी आवाज न आती।'

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया, लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धांधली कर लेने के बाद, गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, इसलिए जब तीसरी बार गुल्ली डण्डे में लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दाँव देना तय कर लिया।

गया ने कहा-अब तो अंधेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा कल बहुत सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदावे, इस लिए वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नहीं, नहीं अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव लेलो।'

'गुल्ली सूझेगी नहीं।

'कुछ परवाह नहीं।'

गया ने पदाना शुरू किया, पर उसे अब बिलकुल अभ्यास न था। उसने दो बार टांड लगाने का इरादा किया, पर दोनों ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह अपना दाव पूरा कर चुका। बेचारा घंटा भर पदा, पर एक मिनट में ही

अपना दाँव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

एक दाँव और खेल लो। तुम तो पहले ही हाथ में चूक गये।

'नहीं भैया अब अँधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। क्या कभी खेलते नहीं ?

'खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया !'

हम दोनों मोटर पर जा बैठें और चिराग जलते जलते पड़ाव पर पहुँच गये। गया चलते-चलते बोला--कल यहाँ गुल्ली-डंडा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। तुम भी आओगे ? जब तुम्हें फुरसत हो, तभी खिलाड़ियों को बुलाऊँ।

मैंने शाम को समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस आदमियों की मंडली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले, अधिकांश युवक थे, जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ, मैं मोटर पर बैठा बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित रह गया। टाँड लगाता, तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की सी वह झिझक, हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डंडे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती है।

पढ़ने वालों में एक युवक ने कुछ धांधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली रोक ली थी। गया का कहना था–गुल्ली जमीन पर लगकर उछली है। इस पर दोनों में ताल ठोकने की नौबत आई। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देख कर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो जरूर मार पीट हो जाती। मैं खेल में न था; पर दूसरों के इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब कुछ भूलकर खेल में मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा मैंने धांधली की, बेईमानियां की, पर उसे जरा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह खेल न रहा था मुझे खेला रहा था, मेरा मन रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गई है। मैं अब उनका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, सहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हम में कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।

—:o:—

श्री सुदर्शन

सुदर्शन जी का जन्म १८९६ में सियालकोट में हुआ। बाल्यावस्था ही से उनकी साहित्य में रुचि थी। जब छठी श्रेणी में पढ़ते थे तब उन्होंने उर्दू में पहली कहानी लिखी। कालेज छोड़ने के बाद आपने कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक-विभाग में काम किया। आप उर्दू की सुन्दर मासिक पत्रिका 'चंदन' निकालते थे। हिन्दी में सबसे पहली कहानी आपने १९२० में सरस्वती में लिखी

सुदर्शन जी की कहानियां सरल, स्वाभाविक और मनोरंजक होती हैं शैली सुन्दर काव्य-मय और लालित्य-पूर्ण है। कुछ मिठास की नदी सी बहती चली जाती है। प्रेमचंद की कहानियों की भांति इनकी कहानियों में भी कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता है। आपकी कहानियों को पढ़कर पाठक दुःख की तलेटी में चाहे न पहुंचे, लेकिन हरेक कहानी में कोई न कोई स्थल अवश्य आता है जिस में दुःख अथवा सुख के अतिरेक के कारण गला भर आता है और आंखें छल-छला आती हैं।

अब तक आप अनूदित तथा मौलिक लगभग ५० पुस्तकें उर्दू में और १२ हिन्दी में लिख चुके हैं।

आपने नाटक भी लिखे हैं। 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' नाम से आपका एक प्रहसन काफी पसन्द किया गया है।

सुदर्शन जी का असली नाम बदरीनाथ है। कुछ वर्षों से आप सिनेमा में चले गए हैं। और आपके दो एक बोलपट काफी लोकप्रिय हुए हैं। पर साहित्यसेवा आपने अभी नहीं छोड़ी। हाल ही में आपका एक सुन्दर नाटक हिन्दी में भाग्य-चक्र' के नाम से निकला है और सोलह शृंगार के नाम से एक कहानी-संग्रह उर्दू में प्रकाशित हुआ है।

गुरु-मंत्र

आधी रात के समय नवयुवक एकनाथ ने बहुत धीरे से अपने मकान का दर्वाजा खोला, और बाहर निकल आया। गली, बाज़ार, गाँव, सब सुनसान और अन्धकार मय थे। एकनाथ ने एक क्षण के लिए ठहर कर अपने घर की तरफ देखा, अपने बूढ़े बाबा और निर्बल दादी का खयाल किया, अपने मित्र बन्धुओं के विषय में सोचा, और उसकी आँखों में पानी आ गया। मगर वह निर्बलता कुछ क्षणों के लिए थी, ज़ैसे कभी कभी पंछी पर खोलते समय रुक जाता है। एकाएक उसने आँसू पोंछ डाले, और जल्दी जल्दी पाँव उठाता हुआ गाँव से बाहर चला गया। पिंजरे में दाना पानी सब कुछ था, पंछी ने किसी की भी परवाह न की और उड़ गया। चारों ओर अँधेरा था दूर—काले वृक्षों की काली छाया तले कुत्तों और गीदड़ों के रोने की आवाज़ें सुनाई दे

रही थीं। घर में बूढ़ा बाबा और दादी का वात्सल्य बेसुध पड़ा था, मगर एकनाथ संपूर्ण दृढ़ता से झाड़ियों में उलझता हुआ, गढ़ों में गिरता हुआ, पत्थर से ठोकरें खाता हुआ चला जाता था और उसे इस बात की जरा भी चिन्ता न थी, कि मार्ग भयानक है और रात के अँधेरे में कई बलाएं छिपी हो सकती हैं।

प्रातःकाल जब दो बूढ़ों के हृदय बिदारक आर्तनाद से पैठन गाँव में कुहराम मचा हुआ था वह कई कोस की यात्रा समाप्त कर चुका था और एक नदी के किनारे बैठा अपने पाँव धो रहा था, जिन्हें जंगल के काँटों ने लहूलुहान कर दिया था। उसकी देह रतजगी-यात्रा से चूर-चूर हो रही थी, परन्तु उसके विचार आशा के आकाश में उड़े चले जाते थे और उन्हें रोकने की शक्ति पृथ्वी की किसी वस्तु में न थी। थोड़ी देर के बाद वह उठा और अपने गाँव की तरफ मुंह करके खड़ा हो गया। इस समय वह अपने घर की दशा का चिन्तन कर रहा था और अपनी आन्तरिक आँखों से वहाँ के दृश्य देख रहा था। हम अपना घर छोड़ सकते हैं परन्तु उसकी स्मृति को भूलना आसान नहीं।

इतने में एक मुसाफिर घोड़े पर सवार उधर से गुजरा और एकनाथ के पास पहुंच कर रुक गया। एकनाथ ने दोनों हाथ बाँधकर अभिवादन किया। मुसाफिर ने आशीर्वाद दिया और पूछा—'कहाँ जाओगे भैया?'

एकनाथ ने अपने गाँव की ओर पीठ मोड़ ली और

अपने सम्मुख फैले हुए विस्तृत जंगल की तरफ उंगली उठा कर उत्तर दिया—'बड़ी दूर !'

मुसाफिर—'मगर फिर भी कहाँ ?'

एकनाथ—'श्री गुरु जी के चरणों में ।'

मुसाफिर घोड़े से उतर आया और एकनाथ के कंधे पर स्नेह से अपना हाथ रख कर बोला—'तुम्हारा गुरु कौन है ?'

एकनाथ—'पण्डित जनार्दन पन्त ।'

यह कह कर एकनाथ ने दोनों हाथ बाँध कर नम्रता से सिर झुका लिया, जैसे वह इस समय भी गुरु के सामने खड़ा था। मुसाफिर को नवयुवक की श्रद्धा पर आश्चर्य हुआ—'कौन जनार्दन पन्त ? क्या वही तो नहीं, जो देवगढ़ के दीवान हैं ?'

एकनाथ—'जी हाँ वही महात्मा जिन के सदृश दूसरा आत्म-संयमी आज सारे भारतवर्ष में नहीं है । क्या आप ने उनके दर्शन किए हैं ?'

यह कह कर उसने मुसाफिर की ओर बड़ी उत्सुकता से देखा।

मुसाफिर—'हां कई बार दर्शन किए हैं। परन्तु वह तो किसी को गुरु-मन्त्र नहीं देते, न मैंने उन के यहां कोई शिष्य देखा है । मुझे आश्चर्य है कि उन्होंने तुम्हें कैसे चेला बना लिया ।'

एकनाथ—(उदास होकर) 'उन्होंने मुझे चेला नहीं बनाया ।

मुसाफिर—'अरे !'

एकनाथ--'मगर मैंने उनको गुरु बना लिया है। अब जाकर श्री-चरणों में लेट जाता हूं। देखूंगा कैसे कृपा नहीं करते ?'

मुसाफ़िर--'तुम्हारी आयु थोड़ी है अभी।'

एकनाथ-'समझदार के लिये थोड़ी भी बहुत है।'

मुसाफिर--'न तुम्हें संसार का अनुभव है।'

एकनाथ--'गुरु जी की कृपा-दृष्टि से अनुभव भी हो जाएगा।'

मुसाफिर--'यह मार्ग बड़ा विकट है।'

एकनाथ--'साहस हो, तो सारे काम बन जाते हैं।'

मुसाफिर ने हंस कर कहा--'मगर बेटा! देवगढ़ तक कैसे पहुँचोगे! बड़ी दूर है यहाँ से।'

एकनाथ--'जिनके दिल को लगी हो, उनके लिये दूरी कोई चीज नहीं है।'

मुसाफिर--'कोई घोड़ा क्यों नहीं ले लेते।'

एकनाथ--'गुरु जी के पास नंगे पांव ही जाना ठीक है।'

मुसाफिरने यह बात सुनी, तो बड़ा खुश हुआ। उसने एक दुनियां देखी थी, मगर ऐसा नवयुवक उसकी आंखों से आज तक न गुजरा था। यह नवयुवक न था, श्रद्धा और पुरुषार्थ की जीती जागती मूर्ति था। उसने एकनाथ को प्रेम से देखा और घोड़े पर सवार होकर चला गया।

कितने कष्ट सहकर, कितने सङ्कट झेल कर एकनाथ देवगढ़ पहुंचा, इसका अनुमान करना आसान नहीं। परन्तु

देवगढ़ पहुंच कर उस को वह सारे कष्ट भूल गये। प्यासा हरिण जल की खोज में कितना भागता है, कैसे घबराता है, उसका शरीर थककर पसीना-पसीना हो जाता है, परन्तु जल के समीप पहुंच कर उस की सारी थकान जाती रहती है, वहाँ जाकर उसका कुम्हलाया हुआ हृदय-कमल देखते देखते खिल उठता है। एकनाथ की भी यही दशा थी। वह अब गुरु जी की नगरी में आ पहुंचा था। वह स्वर्गीय स्वप्नों की पुण्य-भूमि में आ गया था, जिसके लिये उसकी आँखें तरसती थीं।

तीसरे पहर का समय था, एकनाथ, पण्डित जनार्दन पंत की सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय पण्डित जी सरकारी कागज देखने में तन्मय हो रहे थे। एकनाथ चुपचाप एक कोने में खड़ा हो गया और भक्ति-भाव से उनको ओर देखने लगा। यही वह व्यक्ति है, जो संसार और संसार के व्यवहार में रहते हुए भी संसार से बाहर है, जो गृहस्थ होते हुए भी अपने युग का सब से बड़ा संन्यासी है, जो देवगढ़ का दीवान भी है, सूरमा सिपाही भी है, सेनापति भी है और पण्डित भी है। यही वह राज-भक्त है, जिसका हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मान करते हैं, जिसके सामने सिर उठाने की बादशाह को भी मजाल नहीं। एकनाथ गद्‌गद् हो गया। उसकी आँखों में पानी भर आया। सहसा पण्डित जी ने सिर उठाया और एकनाथ की तरफ देखा। एकनाथ के शरीर में बिजली की लहर सी दौड़ गई। यह तो वही मुसाफिर थे,

जो उसे अपने गाँव के पास मिले थे, जो हंस हंस कर बातें करते थे, जिन की आँखों में मन को मोहने वाली शक्ति भरी थी। एकनाथ दौड़कर आगे बढ़ा और पण्डित जी के चरणों से लिपट गया। इस समय उसके आँसू पण्डित जी के पाँव पर गिर रहे थे। मगर यह आँसू साधारण आँसू न थे, एकनाथ का प्रेम था, जो अपने गुरु के श्री-चरणों पर निछावर हो रहा था। यह उसकी श्रद्धा थी, जो अपने देवता को रिझाने के लिये हृदय गृह से चली थी।

पण्डित जी ने उसे पाँव पर से उठाया और उद्दण्ड से उद्दण्ड पुरुष को भी बस में कर लेने वाले ढंग से मुस्कराकर कहा--'आखिर, तुम यहाँ आ गये! मगर बहुत कष्ट हुआ होगा।'

एकनाथ ने उनके पाँव की तरफ देखते हुये उत्तर दिया-'श्री-चरणों के दर्शन करके सारा कष्ट भूल गया।'

पण्डित जी--'तो अब क्या इच्छा है?'

एकनाथ--'भगवान सब कुछ जानते हैं, अपने मुंह से क्या कहूं।'

पण्डित जी--'गुरु-मंत्र चाहते हो क्या?'

एकनाथ--'यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न है।'

पण्डित जी--मैं साधारण गृहस्थ हूँ, मुझ से तुम्हारा कल्याण क्या होगा? किसी परमहंस के पाँव क्यों नहीं पकड़ते? बेड़ा पार हो जाए।'

एकनाथ--'मैंने इस युग का सब से बड़ा परमहंस पा

लिया, अब और कहाँ जाऊँ ? आप गृहस्थ हैं, परन्तु आपकी पदवी साधु संन्यासियों से भी ऊंची है।'

पण्डित जी--'यह तुम्हारी श्रद्धा है। मैं तो राज का एक मामूली नौकर हूँ।'

एकनाथ--'मगर मेरे लिए तो आप राजाओं के भी राजा हैं।'

यह कह कर एकनाथ फिर झुका और पण्डित जी के पाँवों में लेट गया। पण्डित जी निरुत्तर हो गये। विनय और श्रद्धा के सामने तर्क की पेश नहीं जाती। देवगढ़ के दीवान साहब एक साधारण ग्रामीण नवयुवक के सामने चुप थे, और न जानते थे कि उसे कैसे समझायें ? सोच सोच कर उन्होंने उसे उठाया और गम्भीरता से कहा--'हमें गुरु-मन्त्र देने में आपत्ति नहीं, परन्तु पहले तुम्हें सिद्ध करना होगा कि तुम इसके अधिकारी हो। कहो परीक्षा के लिये तैयार हो ?'

एकनाथ ने सिर झुका कर उत्तर दिया--'जी हाँ ! बड़ी खुशी से।'

यह कह कर उसने गुरु के पाँव तले से मिट्टी उठाई और माथे पर मल ली। मानो, यह मिट्टी न थी, चन्दन का बुरादा था।

तीन वर्ष बीत गये। एकनाथ ने गुरु जी की सेवा में दिन रात एक कर दिया। ऐसी लगन से किसी बिके हुए दास ने भी अपने स्वामी की सेवा न की होगी वह उनके कपड़े, धोता था, उनके लिये धान कूटता था, पानी भरता था,

बाल-बच्चों को खिलाता था और इतना ही नहीं, उनके दफ्तर का सारा काम अपने हाथ से करता था। दीवान साहब अब हिसाब-किताब आदि बहुत कम देखते थे, सारा स्याह-सफेद एकनाथ के हाथ में था। रियासत के लोग उसकी ईश्वर दत्त योग्यता और कार्य पटुता देख कर वाह-वाह करते थे, यहां तक कि राजा भी उसकी प्रशंसा करता था। मगर एकनाथ को इस पर तनिक भी अभिमान न था। वह समझता था, गुरु जी परीक्षा ले रहे हैं। पास हो गया, तो जन्म-मरण के फंदे से मुक्त हो जाऊँगा।

प्रात:काल था, पण्डित जी अपने मन्दिर में बैठे ईश्वर का भजन कर रहे थे और एकनाथ बाहर खड़ा था, कि कोई विघ्न न डाल दे। इतने में घोड़े के टापों का शब्द सुनाई दिया एकनाथ डर गया। उसे भय हुआ कि कहीं इससे गुरु जी की समाधि न खुल जाए। उनका ध्यान टूट गया तो क्या जवाब दूँगा? वह जल्दी से बाहर निकला कि सवार को रोक दें। पर यह सवार कोई साधारण सवार न था, यह शाही सवार था, जो राजा का खास परवाना लेकर आया था। एकनाथ ने आगे बढ़कर कहा--'गुरु जी ईश्वर-भजन कर रहे हैं नीचे उतर आओ'।

सवार घोड़े से नीचे उतर आया और जेब से एक मुहर वाला लिफाफा निकाल कर बोला--'यह शाही परवाना है'! अभी दीवान साहब के पास पहुंचा दो।'

एकनाथ ने लिफाफा ले लिया और उत्तर दिया–'वह तो समाधि में हैं।'

सवार–'कोई बात नहीं। जाकर समाधि से उठा दो।'

एकनाथ––'यह असम्भव है। (थोड़ी देर बाद) क्या बहुत जरूरी काम है।'

सवार––'अब मैं तुम से क्या कहूं? जरूरी है या नहीं। राजा साहब का हुक्म है। इसी समय पहुंचाओ। मैं पागल न था जो तुम पर जोर देता।'

एकनाथ ने लिफाफे को उलट कर देखा, और कहा–'मगर ऐसी कौन सी बात है, जो जरा भी प्रतीक्षा नहीं कर सकती।'

सवार–भैया! मेरा कर्तव्य आज्ञा का पालन करना है। तुम जाकर सूचना देते हो या मैं खुद जाऊँ? हर हालत में यह परवाना अभी उनके पास पहुंच जाना चाहिए। जरा सी देर भी रियासत को बरबाद कर देगी।

एकनाथ––'मगर इस समय तो उनके पास कोई भी नहीं जा सकता। यहां तक कि यदि स्वयं राजा साहिब आ जाएं, तो उनको भी आगे न बढ़ने दूं। ईश्वर के ध्यान में हैं।'

सवार ने कुछ सोचकर धीरे से कहा–'तो तुम्हें साफ ही कहना पड़ेगा। शहर पर किसी दुश्मन ने हमला किया है। राजा साहिब यह परवाना भेजकर अपने कर्तव्य से निवृत्त हो गये। शहर बचे या बर्बाद हो, उन की बला

से। और किसी को इस की फिक्र ही नहीं। ले देके एक दीवान साहब हैं, जिनको शहर की हिफाजत का ख्याल है, और जिन के इशारे पर सिपाही मर मिटने को तैयार हैं। अब यह तुम खुद ही सोच लो कि उन को इस वक्त सूचना देना मुनासिब है या नहीं। मगर मैं इतना कहे देता हूं कि उनको सूचना न हुई,तो दुश्मन किले की ईंट से ईंट बजा देगा।'

यह कह कर सवार चला गया, मगर उसके शब्द एकनाथ के कानों में उसी तरह गूँज रहे थे। उसने परवाना गुरुजी के कागजों में रख दिया और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगा, कि क्या करना चाहिए? उठाऊं या न उठाऊं? ध्यान में हैं। जो राजाओं का भी राजा है, उस के दरबार में हैं। कहीं अप्रसन्न न हो जायें, क्रोध में न आ जायें। सब किये किराये पर पानी फिर जायगा। एक दिन कहते थे, भगवान अपने भक्तों का काम स्वयं कर देते हैं। कहेंगे—यह बात तुझे कैसे भूल गई? लज्जित हो जाऊंगा, उत्तर न दे सकूंगा, उनके सामने सिर उठाने के योग्य न रहूंगा। तो ठीक है, मुझे चुप रहना चाहिए, देखूं परमात्मा क्या करता है?

एकनाथ निश्चिन्त हो गया और इधर उधर टहलने लगा। मगर चिन्ता शहद की मक्खी के समान है। इसे जितना हटाओ उतना ही और चिमटती है। एकनाथ को फिर इसी चिन्ता ने आ घेरा। कहीं वैरी निकट न आ पहुंचा हो, राजा ने जब ही जरूरी परवाना भेजा है। ऐसा न हो, मैं यहाँ मन्दिर के द्वार पर बैठा रहूं और गढ़ पर

दुश्मन का अधिकार हो जाए । उस समय गुरु जी के मन की क्या अवस्था होगी ? बहुत नाराज होंगे ! कहेंगे-तुझे इतना भी विवेक नहीं कि समय-कुसमय ही पहचान सके । हम समाधि में बैठे रहे उधर शहर की सफ़ाई हो गई । इस का उत्तरदाता केवल तू है, जिसने ऐसी मूर्खता की । एकनाथ असमंजस में पड़ गया । कभी सोचता उठा देना चाहिये, इस समय यही धर्म है । कभी सोचता नहीं उठाना चाहिए, समाधि में हैं । वह दोनों तरफ देखता था, परन्तु उसे दोनों तरफ अन्धकार दिखाई देता था । प्रकाश कहीं भी न था । वह घबराहट की दशा में, इधर उधर फिर रहा था । ऐसी दशा उस की आज तक कभी न हुई थी । अपने चारों तरफ क़ाले नागों को फुंकारे मारते देख कर भी उसका विवेक नष्ट न होता । मगर इस समय. . .।

वह बहुत व्याकुल था । उसके मस्तिष्क से पसीने की बूंदें टपक रही थीं । उसके मुंह का रंग एक एक क्षण में बदलता था । जैसे वह उसके जीवन-मरण का प्रश्न हो । इस समय उसे कौन बचा सकता है ? इस निराशा के भंवर से उसे कौन निकाल सकता है ? सिवाय गुरु जी के और कोई नहीं ! और गुरु जी. . .उसने उनकी ओर देखा । वह अभी तक आँखें बन्द किए ध्यान में बैठे थे । एकनाथ भूमि पर गिर पड़ा और फूट फूट कर रोया, मगर इससे क्या होता था ! समय बहुत तेजी से उड़ा चला जाता था ।

इतने में दुर्ग के बाहर दुश्मन की तोपें गर्जने लगीं ।

एकनाथ का पीला मुँह और भी पीला हो गया। अब सोचने का अवसर न था, काम करने का समय था। एक क्षण में इधर या उधर! एकनाथ ने अपने धड़कते हुए दिल पर हाथ रखा, अपनी तर्क-शक्ति को एकत्रित किया, एक मिनट के लिये सिर झुकाया और निश्चय कर लिया।

थोड़ी देर के बाद वह गुरु जी की जंगी पोशाक पहने उनके जंगी घोड़े पर सवार था और देवगढ़ की बीर सेना उसके पीछे 'बम बम महादेव' कहती हुई दुर्ग से बाहर निकल रही थी। एकनाथ लड़ा, और विजयी हुआ और दुश्मन को भगा कर वापस आ गया। परन्तु उस समय यह किसी को भी पता न था कि यह एकनाथ है, पंत जी नहीं हैं। एकनाथ ने घोड़ा अश्व-शाला में बांध दिया, कवच उचार कर दीवार के साथ लटका दिया और अपने वसन्ती रंग के वस्त्र पहन कर चुपचाप अपने स्थान पर बैठ गया, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

थोड़ी देर बाद गुरु जी की समाधि खुली और वह बाहर निकले। वहां हर एक के मुंह पर इसी घटना का बखान था। लोग कहते थे, आज दीवान साहब ने कमाल किया। उनकी तलवार ऐसे चलती थी जैसे कैंची कपड़े पर चलती है। दुश्मन कैसे घमण्ड से आया था। मानो देवगढ़ में सिपाही नहीं बसते, पशु-पक्षी रहते हैं। मगर दीवान साहब ने उसके दांत खट्टे कर दिये। दीवान साहब को आश्चर्य हो रहा था? कि ये कहते क्या हैं? कौन आया? किसने आक्रमण किया? किसने दांत खट्टे किये। इनको किसी भी बात का ज्ञान न

था। आश्चर्य-चकित आगे बढ़े जाते थे कि एक स्थान पर कुछ आदमी बातें करते दिखाई दिये। दीवान साहब उसके पीछे खड़े हो गये और सुनने लगे।

एक आदमी कह रहा था—'आज तो दीवान साहब की चुस्ती चालाकी देखने योग्य थी।'

दूसरा—हम उन से छोटे हैं, परन्तु हम में वह जोश नाम को नहीं। अद्भुत आदमी हैं।

तीसरा—'आदमी ! वाह भाई वाह !! उन्हें आदमी कौन कहता है। वे तो कोई ऋषि हैं। पापी प्राणियों में यह शक्ति कहां। जवानी, बुढ़ापा सब उनके बस में हैं। चाहे बूढ़े बन जायं, चाहे जवान बन जायं।'

चौथा मुसलमान था, वह गम्भीरता से बोला—ज़रूर ज़रूर बड़े बहादुर हैं। आज तो बिलकुल नौजवान मालूम होते थे, वह बुढ़ापा कहीं नजर ही न आता था।'

तीसरा—'और भैया ! हम तो देख रहे थे दुश्मन उनको देखते ही किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते थे, जैसे किसी ने मन्त्र पढ़कर उसकी संज्ञा छीन ली हो।'

चौथा—'आँखों से आग बरसती थी। सिद्ध पुरुष महात्माओं के येही लक्षण हैं। जिसकी तरफ देख लें वही वश में हो जाता है। कुछ करना चाहे तब भी नहीं कर सकता।

दूसरा—'और उनका घोड़ा कैसा उड़ता चला जाता था, यह शायद आप ने नहीं देखा।

तीसरा–'खूब देखा, दो ही घंटे में दुश्मन मैदान छोड़ भागा किस घमण्ड से आया था, मानो विजय निश्चित है।

चौथा–अब कभी इस तरफ देखने का भी साहस न करेगा।

पहला–समझता होगा, बादशाह विलासप्रिय हैं, जाते ही विजय हो जायगी, यह पता न था कि पन्त जी का सामना है। कैसा भागा !

दूसरा–'अच्छी शिक्षा मिली। आजीवन स्मरण रखेगा।

पाँचवां––परन्तु एक और बात भी सुनी है, सुनकर बुद्धि चकराती है। बड़ी अद्‌भुत बात है।

पहला––'वह क्या ?

पाँचवां––कुछ लोगों का कहना है, जब वह दुश्मन से लड़ रहे थे, उसी समय वह अपने मन्दिर में भी बैठे थे।

दूसरा––हां, हां, हां ! सुना तो हमने भी है।

तीसरा––'परन्तु एक ही समय में दो स्थानों पर ! यहाँ भी, वहां भी !! अचरज होता है।

चौथा––'भाई जिसकी पीठ पर परमेश्वर का हाथ हो, उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं। भगवान जो चाहे, कर दे, उसका हाथ कौन पकड़ सकता है ? वह चाहे तो तुम अभी आकाश में उड़ने लगे, हम मुंह देखते ही रह जायं। प्रभु की लीला है।

पाँचवां––'और क्या ?

पहला––'यह दीवान साहब नहीं हैं, नगर-रक्षक देवता हैं।

Raj Kumar Agarwal B.Sc.

सहसा एक आदमी ने पीछे मुड़कर देखा और दूसरे को दिखाया। सब दंग रह गये। यह क्या? दीवान साहब चले जा रहे हैं एक बोला—लो यह भी देख लो। हम में से किसी का रूप धारण करके यहां खड़े थे, अब अपने रूप में जा रहे हैं। हम ने तो पहले ही कह दिया था कि यह महात्मा जो चाहे सो कर सकते हैं।

अब दीवान साहब सब कुछ समझ गये। यह काम एकनाथ ही का है, किसी दूसरे का नहीं। उसी ने हमारे वस्त्र पहने और दुश्मन को हरा कर लौट आया। यह बालक कितना वीर है, कितना समझदार? राजा का परवाना आया होगा हम समाधि में थे, हमें नहीं उठाया, स्वयं लड़ने चला गया। कोई मूर्ख होता, तो कहता, शहर लुटता है, तो लूटे। हमें क्या? बैठे गुरु की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। उन्होंने मन्दिर में पहुंचते ही एकनाथ को गले से लगा लिया और कहा—'तूने मेरी लाज रख ली।

एकनाथ बराबर उनके चरणों में गिरता था, कहता था—'आप मुझे लज्जित करते हैं। मैंने तो कुछ नहीं किया'।

पण्डित जी ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'तुम्हारी वीरता की लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, मुझे यह पता न था कि तुम तलवार के भी धनी हो।'

एकनाथ—'यह सब आप की कृपा है, वरना मेरी भुजाओं में ऐसा बल कभी न था।'

पण्डित जी--'लोगों को सन्देह भी नहीं हुआ कि यह तुम हो, मैं नहीं हूं।'

एकनाथ--और वास्तव में यह आप ही का प्रताप है, नहीं मैं किस योग्य था ? मुझे केवल इतना स्मरण है कि मैंने आप के वस्त्र पहने और घोड़े पर सवार हुआ इस के बाद क्या हुआ इस का मुझे जरा भी ज्ञान नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता था जैसे कोई दैवी शक्ति मुझे उड़ाये लिये जाती है, जैसे मैं अपने आपे में न था। अवश्यमेव आप ही की सत्ता मेरे शरीर में आ गई थी। अन्यथा यह विजय असम्भव थी। शरीर मेरा था, चेतना आप की थी।'

पण्डित जी--'लोग अब तक यही समझते हैं कि यह मैं ही था।'

एकनाथ--'स्वयं मेरी भी यही धारण है। आपने मुझे एकमात्र अपना साधन बनाया था।'

इस श्रद्धा को देख कर पंडित जी की आंखें सजल हो गईं। थोड़ी देर बाद बोले--'वत्स ! अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। इस बूढ़ापे में यह राज्य-कार्य करना बड़ा कठिन है। मैं चाहता हूं, अब चार दिन विश्राम करूं। दीवान की पदवी तुम संभालो तो मुझे छुट्टी मिले। आज की घटना ने मेरी आंखें खोल दी हैं। मुझे बिश्वास हो गया है कि यह काम तुम खूब संभालोगे। राजा साहिब को भी आपत्ति न होगी। मेरा जा कर दो शब्द कह देना ही काफी है, वे स्वीकार कर लेंगे। कहो तो अभी जाऊं।'

एकनाथ की आँखों में आँसू आ गए। उसने दोनों हाथ बाँध लिए, जैसा कोई भूल हो गई हो। वह भूमि पर मुंह के बल गिर पड़ा और नम्रता से बोला--'मुझे कुछ नहीं चाहिये। केवल आप के चरणों में पड़ा रहूं। मेरे लिये यही सब कुछ है।

पण्डित जी एकनाथ का अभीष्ट समझ गए, परन्तु चुप रहे। अभी एक परीक्षा बाकी थी।

और कुछ ही दिनों बाद उसका समय भी आ गया।

प्रात:काल था, एकनाथ पंडित जी के स्नान के लिये पानी भर रहा था। इतने में पंडित जी खड़ाऊं पहने हुए आए और मुस्करा कर बोले--'बेटा एकनाथ! कल नव वर्षारम्भ है। इस वर्ष का हिसाब किताब तैयार कर लो। समय थोड़ा है, केवल आज का दिन और आज की रात: परन्तु तुम्हारे जैसे योग्य आदमी के लिए यह कठिन नहीं।

एकनाथने पानी का घड़ा हाथ से रख दिया।

पण्डित जी--'राजा साहिब कल हिसाब देखेंगे। तैयार हो जाएगा या नहीं? यदि न हो सके, तो मैं कर लूं।

एकनाथ--(धीरे से) 'मैं कर लूंगा।'

पण्डित जी--'तो जाओ आरम्भ कर दो। समय बहुत कम है।'

एकनाथ दफ्तर में पहुंचा और हिसाब किताब देखने लगा। काम साधारण न था, सारे वर्ष का हिसाब था। और

वह भी किसी साहूकार का नहीं, एक रियासत का। परन्तु एकनाथ के दिल में जरा भी घबराहट न थी, न मुँह पर चिन्ता के चिह्न थे। उसने किताबों का ढेर सामने रख लिया और पालती मारकर बैठ गया। सूरज आकाश में धीरे धीरे ऊंचा उठा और सिर पर पहुंच गया। मगर एकनाथ उसी तरह बैठा हिसाब देखता रहा। सन्ध्या हो गई, पर एकनाथ को पता भी न था। नौकर आकर शमादान जला गया, एकनाथ काम में लगा रहा। उसे खाने पीने की सुध न थी, न सोने की इच्छा थी। खयाल यह था, कि किसी प्रकार काम समाप्त हो जाए।

आधी रात बीत गई, एकनाथने सारा काम समाप्त कर लिया। सब कुछ ठीक था, केवल एक पैसे का फर्क था। एकनाथ के तेवर बदल गये। सोचने लगा जरा सी भूल ने सारा काम चौपट कर दिया ? उसने रकमों को दूसरी बार जमा किया। फिर वही फर्क। फिर हिसाब किया। पर फर्क न निकला। एक पैसे का अन्तर ज्यों का त्यों था। एकनाथ घबरा गया। रात आधी से भी अधिक जा चुकी थी। चारो ओर सन्नाटा था। लोग अपने अपने घरों में सुख-चैन की नींद सो रहे थे, मगर एकनाथ शमादान के सामने बैठा था और सोचता था, कि पैसे का फर्क कहाँ है ?

पिछले पहर पण्डित जनार्दन की आँख खुली। खिड़की से देखा, दफ्तर में अभी तक प्रकाश है। समझ गये, एकनाथ जाग रहा है। वह धीरे से उठे और बाहर चले आए। दफ्तर

के बाहर चौकीदार भी ऊंघ रहा था, केवल एकनाथ जागता था। पण्डित जी ने धीरे से कहा---'एकनाथ!'

मगर एकनाथ ने कोई उत्तर न दिया, अपना हिसाब करता रहा। पण्डित जी ने फिर पुकार कर कहा-'एकनाथ!'

एकनाथने कुछ नहीं सुना।

पण्डित जी और आगे बढ़े और जरा ऊंची आवाज से बोले---'एकनाथ!'

मगर जवाब में फिर वही सन्नाटा था, जैसे एकनाथ जागता न था, सोता था।

पण्डित जी को अचरज हुआ। वह और आगे बढ़े, और शमादान के सामने इस प्रकार खड़े हो गये कि उनके शरीर की छाया पुस्तक पर पड़ती थी। मगर एकनाथ को अब भी मालूम न हुआ। उसके लिये पुस्तक के अक्षर उसी तरह साफ और रौशन थे। वह हिसाब में तन्मय हो रहा था। उसे दीन-दुनिया की सुधि न थी। इसी तरह आध घंटा बीत गया।

सहसा एकनाथ को अपनी भूल का पता लग गया। उसने खुशी से सिर हिलाया, और हिसाब ठीक करके पुस्तकें बन्द कर दीं। इसके बाद उस ने दोनों हाथ मिलाकर सिर से ऊपर उठाये और अंगड़ाई लेने लगा। इतने में उसने चकित होकर देखा, पंडित जी सामने खड़े हैं। वह घबरा कर आगे बढ़ा और उनके पांव में झुक गया।

पंडित जी ने पूछा–'हिसाब हो गया ?'

एकनाथ–'जी हां, हो गया। आप कैसे आये ?'

पंडित जी–'हम यहां बड़ी देर से खड़े हैं।'

एकनाथ चौंक पड़ा।

पंडित जी–'हमने तुम्हें कई बार बुलाया, मगर क्या जाने तुम कहां थे।

एकनाथ–'मैंने एक भी आवाज नहीं सुनी।'

पंडित जी–'हमारी छाया से पुस्तक पर अंधेरा हो गया तुम्हें इसका भी ज्ञान न हुआ।'

एकनाथ–(हाथ बांधकर) 'अब क्या कहूं, मुझे सन्देह तक नहीं हुआ, कि कोई इस कमरे में खड़ा है। इस समय मेरी दुनिया केवल यह पुस्तक थी।'

पंडित जी खड़े थे, बैठ गये और एकनाथ की मुंह की ओर देखकर बोले–'प्रातःकाल से इसी भांति बैठे थे क्या ?'

एकनाथ––'जी हां, इसी भांति।'

पंडित जी––'कुछ खाया पिया भी नहीं ?'

एकनाथ––'जी नहीं।'

पंडित जी––'नींद भी नहीं आई ?'

एकनाथ––'जरा भी नहीं।'

पंडित जी––'इस समय क्या कर रहे थे ?'

एकनाथ––'एक पैसे का फर्क पड़ता था, उसे निकाल रहा था। बड़ी कठिनाई से पता चला।'

पण्डित जी--'एक पैसे के लिये इतना परिश्रम क्यों किया मामूली बात थी।'

एकनाथ--'मैंने सोचा, भूल आखिर भूल है। चाहे एक पैसे की हो, चाहे एक लाख की।'

पण्डित जी का चेहरा चमकने लगा। वह गम्भीरता से बोले--'वत्स' तू ने मुझे प्रसन्न कर दिया। मेरी परीक्षा बड़ी कठिन थी। बड़े बड़े साधु-सन्त भी कदाचित् इसमें सफल न होते, परन्तु तू सब में उत्तीर्ण हो गया। तू ने कोसों की यात्रा की, और सिद्ध कर दिया कि तेरा हृदय श्रद्धा का सागर है, तूने सिद्ध किया कि तुझ में सेवा-भाव है, तूने युद्ध-क्षेत्र में विजय प्राप्त की, जो प्रमाण इस बात का है कि तू वीरात्मा है, और तुझे मृत्यु का भय नहीं और फिर दीवान की पदवी को ठुकरा दिया। कोई लोभी ऐसे अवसर पर फूला न समाता। यह त्याग-भाव कितना पवित्र कितना महान् है। परन्तु मैंने तुझे उस समय भी गुरु-मन्त्र न दिया। क्योंकि अभी एक परीक्षा बाकी थी, आज वह भी समाप्त हो गई। मैं देखना चाहता था कि तुझ में एकाग्रता है या नहीं, जिसके बिना ईश्वर-भक्ति के मार्ग पर दो पग भी चलना असम्भव है। मैं आया मैंने तुझे आवाजें दीं, मैंने तेरा प्रकाश रोक लिया, परन्तु तुझे मालूम भी न हुआ। यह एकाग्रता की पराकाष्ठा है। अब मैं तुझे गुरु-मन्त्र देने को तैयार हूँ। मुझे तेरे जैसे शिष्य पर गर्व है।'

उस समय एकनाथ के चेहरे पर ऐसा तेज था, जो इस मर्त्य-लोक में कभी कभी दिखाई देता है। आज उसका वर्षों

का परिश्रम सफल हुआ है, आज वह परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। उसने वहीं भूमि पर गिरकर घुटनें टेक दिये।

पण्डित जी ने फिर कहा--'और मुझे यह भी आशा है, कि जिस प्रकार तू ने आज एक पैसे के भूल के लिये अपना इतना समय खर्च किया है, उसी प्रकार भक्ति-मार्ग पर चलते हुये भी तू इस नियम को स्मरण रखेगा और छोटी से छोटी बुराई की अवलेहना न करेगा। अब जाकर आराम कर। कल मैं तुझे प्रकाश, पवित्रता और अमर जीवन के सन्मार्ग पर चलने का उपदेश दूँगा।'

एकनाथ का चेहरा और भी चमकने लगा।

———

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

कुछ देर तक हिन्दी में शास्त्री जी की लौह-लेखनी का बोल बाला रहा है। पुरानी ऐतिहासिक घटनाओं को पृथ्वी के नीचे दबे हुए भग्न खंडहरों से निकाल कर, उन्हें अपनी ओजमयी काव्य का रस देने वाली भाषा का आवरण पहना कर, पाठकों के सामने आप ने रखा। प्रवाह तीखा और मार्मिक, कला स्पष्ट और अभिधात्मक—लोग बहुत देर तक आपकी लेखनी की रसमाधुरी का पान करते रहे, पर इधर कुछ दिनों से आप, लिखना छोड़, दिल्ली से कुछ मील दूर शाहदरे में एकान्त और शान्त-मय जीवन बिता रहे हैं।

शास्त्री जी की आयु ६८ से ऊपर है जन्म आपका १८८१ में दिल्ली में हुआ। आप एक सफल वैद्य हैं। कई वर्ष तक बम्बई में काम करते रहे, फिर दिल्ली और लखनऊ में रहे। आपकी पहली कहानी १९१४ में 'गृहलक्ष्मी' में प्रकाशित हुई थी, किन्तु तब कहानी लेखक के नाते उन्हें बहुत कम लोग जानते थे। 'हृदय की परख आपका पहला उपन्यास था, जिसने हिन्दी साहित्य में हल-चल मचा दी। फिर आप कहानियों की ओर झुके। यहां भी आपको सफलता मिली। जो कुछ लिखते हैं उस में डूब कर लिखते हैं और मन्तव्य के अनुकूल लिखते हैं। आपने कुछ नाटक भी लिखे हैं।

———

बावर्चिन

सन् १८४५ की १८ वीं मई के तीसरे पहर एक पालकी चाँदनी चौक में होकर लाल किले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख्वाब और जरी के पर्दों से ढंकी हुई थी। आठ कहार उसे कन्धों पर उठाये थे और १६ तातारी बाँदियाँ नङ्गी तलवारें लिये उसके गिर्द चल रही थीं उनके पीछे ४० सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफसर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर सवार था। उसकी जरबफ्त की बहु-मूल्य पोशाक पर कमर में नाजुक तलवार लटक रही थी, जिसकी मूठ पर गङ्गा-जमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी दाढी के बीच, अङ्गारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आँखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़ कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चाँदनी चौक की सड़कें आज की-सी तारकोल बिछी हुई आईना की तरह चमचमाती न थी, न मोटरों की घोंघों-पोंपों और सर्राटेबन्द दौड़ थी। चाँदनी चौक की सड़कों पर काफी गर्द-गुबार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियाँ एक अजब बांकी अदा से उछला करती थीं।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहाँ तब एक बड़ा सा हौज़ था, जो चाँदनी चौक की नहर से मिल गया था; और जहाँ कम्पनी बाग और कमेटी की लाल सङ्गीन इमारत खड़ी है, वहां एक बड़ी भारी किन्तु खस्ताहाल सराय थी, जिसकी बूर्जियाँ टूट गई थीं और जहाँ अनगिनती खच्चर, टट्टू, बैल-गाड़ियां, घोड़े और परदेसी बेतरतीब से पेड़ों के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों में भरे हुये थे।

जिस समय पालकी वहां से गुजर रही थी, उस समय हौज़ पर ख़ासा धोबी-घाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु सङ्गीन फाटक पर देशी विदेशी आदमियों का जमघट था!

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथ-पथ हो रहे थे, उनका दम फूल रहा था और वे लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफसर तेज चलने की ताकीद कर रहा था मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था उसका हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। कुछ कदम और चल कर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा पालकी रुक गई।

तातारी बाँदियाँ झिझक कर खड़ी हो गई। अफसर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी सम्हला न था। एक चाबुक सपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े--उठ, उठ, ओ दोजख के कुत्ते देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस पच्चीस-पचास चाबुक तड़ा-तड़ पड़े, खून का फव्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेल कर अफसर ने खूनी आँखे भीड़ पर दौड़ाई। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सबसे आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भींगी होंगी। अफसर ने डपट कर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण सपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द--साले, जल्दी!

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा--जनाब! हुक्म बजा लाता हूं, मगर जबान सम्हाल.....

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वहीं तड़प कर गिर गया उसकी नाक और मुंह से खून का फव्वारा बह चला। अफसर

ने और एक आदमी को कन्धा लगाने का हुक्म दिया। क्षण भर में पालकी फिर अपनी राह लगी।

(२)

चिराग जल चुके थे। दीवाने खास में हजारों फानूसों की सब आफूरी मोमबत्तियाँ जल रही थीं। जमुना की लहरों से धुल कर पूर्वी हवा झरोखों से छन छन कर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ लाने की इन्तजारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहूलुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—'होशियार, अदब कायदा निगहदार!' यह शब्द-स्वर चोबदारों ने दुहराया—'होशियार, अदब कायदा निगहदार!' उमराव-मण्डल और मन्त्रि-मंडल जमीन तक सिर झुका कर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतर ड्योढ़ी से निकल कर सिंहासन पर आ बैठे। चार बाँदियाँ मोरछल लेकर बगल में आ खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—'जल्ले इलाही बरामद कर्द, मुजरा अदब से!'

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुक कर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कहकर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वज़ीर को संकेत किया। वज़ीर ने जवान से कहा—जवान ! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत अगचें सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी ख़ास ज़बान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात विस्तार से बयान करो।

युवक ने जमीन पर लोट-लोट कर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फ़र्माया—सब हरफ़-बहरफ़ सही हैं। कहाँ है वह ज़ालिम ज़मीर ?

वह ख़ूंख्वार अफ़सर ज़मीर तख्त के सामने आकर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फ़र्माया—जमीर ! तुझे कुछ कहना है ?

'खुदावन्द ! रहम ! रहम !'

बादशाह ने हुक्म दिया—इस ज़ालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो, मैं इस पर भी रहम किया चाहता हूँ। इसे नौकरी से बरख़ास्त किया जाता है। और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद ज़ब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बाँदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग जमीन तक झुक गए। बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने तक शाही महलों में रहने की तुम्हें इजाजत बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे इलाज को मुक़र्रिर किए जाते हैं।

युवकने बादशाह की क़दमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर में प्रवेश कर गए।

(३)

अन्तःपुर के उन झरखों के भीतर, जहां किसी भी मर्द की परछाईं पहुंचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मख़मली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दुःखदाई घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पाँसा पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटे छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जायगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा एक धवल अट्टालिका, दास दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या-क्या ?

सभी विचार-धाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचार धारा मूर्च्छित कर रही थी--वह कौन है ? वही क्या इन सब भाग्य-परिवर्तन की कुंजी नहीं ? पालकी के उस दुर्भेद पर्दे के भीतर......! वह सोच में मूर्छित हो गया।

हठात् उसकी विचार-धारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटा कर दो दासियों के साथ एक खोंजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाय, घायल युवक इस भय से लपक कर उठा। खोजे ने कहा--खाना

खा लो, और खुदा का शुक्र करो हुज़ूर शाहजादी तुम पर बहुत खुश हैं वे और जल्द तुम्हें देखने की तशरीफ लाने वाली हैं।

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष में प्रवेश किया। दो अल्प-वयस्का दासियाँ परछाईं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर ज़रदोजी और सलमे का बारीक काम अत्यन्त सुन्दरता से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्तिमती रेखा के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानो थी।

केवल क्षणभर ही वह युवक उस अति दुर्लभ मुखकी ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने जरा बढ़कर अपना मस्तक शाहज़ादी के कदमों पर रख दिया। शाहज़ादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहजादी ने मानो फूल बखेर दिये। उसने कहा—कल के हादसे से मुझे बहुत रञ्ज है, पर मैं समझती हूँ, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था, मगर क्या कर सकती थी ? मैंने दादाजान से आते ही शिकायत कर दी है।

युवक ने जरा ऊंचा उठकर शाहजादी का आँचल आँखों से लगाया और बारम्बार जमीन चूमकर कहा—हुजूर, खुदा-

वन्द शाहज़ादी, कल अगर हुज़ूर की पालकी की ख़ाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहाँ ? जहाँपनाह ने इस नाचीज गुलाम, को निहाल कर दिया है। ताबेदार ताउम्र इन कदमों का नमकहलाल रहेगा।

शाहज़ादी कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली गई।

(४)

१२ साल बीत गए। सन् ५७ की १४ वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारियाँ आसमान छू चुकी थीं। निकलसन ने दिल्ली पर घेरा डाल रक्खा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बाग़ियों का साथ दिया। क्षण-भर में बाग़ी हार रहे थे। अंग्रेजी तोपें काश्मीरी दरवाजे पर गरज रही थीं। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फ़तहपुरी मस्जिद के सामने अंग्रेजी घुड़सवार और बाग़ियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशों के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे थे। अंगरेज़ बराबर बढ़ते और जो मिलता उसे संगीनों से छेदते चले आ रहे थे। करनल वाटसन के हाथ में कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर—जनाब इलाहीबख्श। वे एक अरबी नफ़ीस घोड़े पर पान चबाते इतराते बढ़ रहे थे, लोग देख-देखकर भयभीत होकर घरों में छिप रहे थे।

यह इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, जो अपनी जवाँमर्दी और चतुराई से १० वर्ष में बादशाह के अमीर और नगर

के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अंगरेजों ने दमदार मुगलों को जहां तोपों और संगीनों की नोक से वश में किया था, वहां कुछ नमकहराम, संगदिल लोगों को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ों से वश में कर लिया था। इलाहीबख्श भी उनमें से एक थे। १० वर्ष पहले शाहजादी के कदमों पर गिरकर नमक 'हलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होंने दरगुजर कर दी थी। वे अब अङ्गरेजों के भेदिये थे।

दोनों व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गये। हौज के पास, जहां अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फांसियां गड़ी थीं और क्षण-क्षण में चारों तरफ गली कूचों से आदमी पकड़े जाकर फांसी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ खास कैदी इनकी प्रतीक्षा में बंधे बैठे थे। हडसन साहब ने सब को खड़ा होने का हुक्म दिया। इलाहीबख्श ने उनमें से मुगल-सरदारों और राज-परिवार वालों की शनाख्त की, सब फांसी पर लटका दिये गये। इसके बाद, बादशाह किले से भाग गये हैं--यह सुनकर एक फौज की टुकटी लेकर दोनों तीर की तरह रवाना हुये।

(५)

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज पढ़ रहे थे। उनके हाथ कांप रहे थे और आंखों से आसुओं की धार बह रही थी। शाहजादी गुलबानो ने आकर कहा--बाबाजान! यह आप क्या कर रहे हैं?

'बेटी अब और कर ही क्या सकता हूं ? खुदा से दुआ माँगता हूं, कहता हूँ–ऐ दुनिया के मालिक ! मेरी मुश्किल आसान कर, यह तख्त, तैमूर के खून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्शए ।'

गुलबानो ने कहा––बाबा ! दुश्मन किले तक पहुंच चुके हैं आपके लिये सवारी तैयार है भागिए !

बादशाह ने अन्धे की तरह शाहजादी का हाथ पकड़ कर कहा––भागूं कहाँ ? हाय ! वह घड़ी अब आ ही गई ?

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मंगाई, और परिवार के सब लोगों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी हीरे सब को देकर कहा––खुदा हाफ़िज !

किले से निकल कर बादशाह सीधे निजामूद्दीन गए । उस वक्त उनके मुखमण्डल की आभा उतरी हुई थी । कुछ खास-खास ख्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभ-चिन्तकों के सिवा कोई साथ न था । चिन्ता और भय से वे रह-रह कर काँप रहे थे । उनकी सफेद दाढ़ी धूल से भर रही थी बादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियों पर बैठ गये ।

गुलामहुसैन चिश्ती सुनकर दौड़े आए । बादशाह उन्हें देखते ही खिलखिलाकर हंस पड़े । चिश्ती साहब ने पूछा–– खैर तो है ?

"खैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था, कि ये बदनसीब गदरवाले मनमानी करने वाले हैं। इन पर यकीन

करना बेवकूफी है, ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबावेंगे। वही हुआ, भाग निकले ! मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुगलों का आखिरी चिराग हूं। मुगलों के तख्त का आखिरी सांस टूट रहा है, कोई घड़ी भर का मेहमान है। फिर खून-खराबी क्यों करूं ? इसी लिये किला छोड़कर चला आया। मुल्क खुदा का है, जिसे चाहे दे। सैकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अब हवा का रुख कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमें अफसोस क्यों ! हम ने भी तो दूसरों को मिटाकर अपना घर बसाया था ! हां, आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ है तो ले आओ ?

चिस्ती साहब ने कहा--सिर्फ बाजरे की रोटी और सिर्के की चटनी है। हुक्म हो तो हाजिर करूं।

'वही ले आओ।'

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खा और पानी पीकर कहा-बस, अब हुमायूं के मक़बरे में चला जाऊंगा, वहाँ जो भाग्य में होगा, वह होगा।

हुमायूं के मकबरे में हड्सन और इलाहीबख्श ने आकर बादशाह को गिरफ्तार करके रंगून भेज दिया।

(६)

तीन वर्ष व्यतीत हो गये दिल्ली में अंगरेजी अमल जम कर बैठ गया था। लाल किले पर युनियन जैक फहरा रहा था। फांसियों की बिभीषिकाओं ने नगर और ग्राम की

जनता के मन में दहल उत्पन्न कर दी थी। वे दब्बू भेड़ की तरह चुपचाप अंगरेजों के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देखऔर सह रहे थे। इलाहीबख्श के पास बादशाही बख्शीश ही बहुत थी, अब अंगरेजी जागीरों और मेहरबानियों ने उन्हें आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलामों में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होंने कौड़ियों में पाये थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हंस रही थी। संध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्राङ्गण में तख्त के ऊपर बढ़िया ईरानी कालीन पर मसनद के सहारे इलाहीबख्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे। दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हजूर कर रहे थे। मियां जी को, मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गये थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अंगरखे पर कमखाब की नीमास्तीन पहने थे।

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्ति मैला और फटा हुआ बुर्का पहने आ रही है। लोगों ने रोका, मगर उसने सुना नहीं। वह चुपचाप मियां इलाहीबख्श के सन्मुख आ खड़ी हुई।

मियाँ ने पूछा--क्या चाहती हो ?

'पनाह,

'कौन हो ?'

'आफत की मारी !'

'अकेली हो ?'

'बिलकुल अकेली।'

'कुछ काम करना जानती हो!'

'बावर्ची का काम सीख लिया है!'

'तनखाह क्या होगी?'

'एक टुकड़ा रोटी!'

बहुत महीन, दर्द-भरी, कम्पित आवाज में इन जवाबों को सुनकर मियां इलाहीबख्श सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को बुलाकर उस स्त्री को भीतर भिजवा दिया। उस दिन उसी को खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियां इलाहीबख्श दस्तरखान पर बैठे थे दोस्त-अहबाब का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली में बिजली तारों से नहीं बांधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियां शमादानों में जल रही थीं।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बावर्चिन की तारीफ के पुल बांधने लगे। दोस्तों ने कहा—जरा उसे बुलाइये और इनाम दीजिए।

इलाहीबख्श ने बावर्चिन को बुला भेजा। उसने कहा—अपने मालिक से दस्त-बदस्ता अर्ज है कि मैं गैर-मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हां, आका से पर्दा फ़ज़ूल है। इलाहीबख्श के मन में प्रतिक्षण बावर्चिन को देखने की बेचैनी बढ़ चली।

सब लोगों के चले जाने पर इलाहीबख्श स्वयं भीतर गए और बावर्चिन के सामने जा खड़े हुये। बोले—मैं तुम्हारी

मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूं ? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ़ खानदान की दुखियारी हो !

बावर्चिन ने अच्छी तरह अपना बुर्का ओढ़कर कहा--मालिक मेरी कोई दास्तान ही नहीं !

'क्या मुझ से पर्दा रक्खोगी ?'

'यह मुमकिन नहीं है ?'

'तब ?'

'क्या आप मुझे देखना चाहते हैं ?

'जरूर जरूर !'

वह मैला और फटा बुर्का चम्पे की समान उंगलियों से हटाकर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्ति सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आँखों की धुन्ध हाथों से पोंछकर, जरा आगे बढ़कर कहा–तुम्हें, आपको मैंने कहीं देखा है ?

'जी हां मेरे आका ! मेरे दादाजान की मेहरबानी से लाल किले के भीतर, जब आप मेरी डोली में लगाये जाने के लिये चाबुकों से लहू-लुहान किए गये थे तब यह बदनसीब गुलबानो आपको तसल्ली देने आपकी खिदमत में आई थी उम्मीद थी मर्द औरत की अमानत–ख़ासकर वह अमानत, जो दुनिया की चीज नहीं, जिसके दाम जान और कुर्बानी हैं, सम्हाल कर रक्खोगे। पर पीछे यह जानने का कोई जरिया ही न रहा कि हुजूर ने वह जमानत किस हिफ़ाजत से कहां छिपाकर

रक्खी ? गदर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुंह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उनके मुंह से निकल पड़ा--आप शाहजादी गुलबानो. . .?

गुलबानो ने शान्त स्वर में कहा--वही हूं जनाब ! मगर डरियेगा नहीं ! अगर गदर में मेरी अमानत लूट भी गई होगी, तो वह मांगने जनाब की खिदमत में नहीं आई हूं। अब गुलबानो शाहजादी नहीं, हुजूर की कनीज है--महज बावर्चिन है ! मेरे आका, क्या बांदी के हाथ का खाना पसन्द आया ? क्या बदनसीब गुलबानो की नौकरी बहाल रह सकेगी ?

इलाहीबख्श बेहोश होने लगे वे सिर पकड़ कर वहीं बैठ गए। गुलबानो ने पंखा लेकर झलते हुये कहा--जनाब के दुश्मनों की तबीयत नासाज तो नहीं, क्या किसी को बुलाऊं ?

इलाहीबख्श जमीन पर गिरकर शाहजादी का पल्ला चूम कर बोले--शाहजादी, माफ करना ! मैं नमकहराम हूं।

इलाहीबख्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे ! उसके बाद किसी ने फिर उन्हें नहीं देखा !

—:o:—

जैनेन्द्र कुमार

"कल की बात है, साहित्य के आकाश पर एक छोटा सा तारा अपना झिलमिलाता प्रकाश लिये हुए उदित हुआ। देखते देखते वह पूर्णिमा की चांद की भांति दमक उठेगा इसकी आशा किसने की थी ?'

श्री जैनेन्द्रकुमार ने २४, २५ वर्ष की आयु में लिखना आरम्भ किया और उसी तारे की भांति पांच छः वर्ष की अर्से में ही हिन्दी के कहानी लेखकों की प्रथमपंक्ति में आ गए। जैनन्द्रकुमार युगप्रवर्त्तक लेखक हैं। भाषा में आप ने आते ही क्रान्ति पैदा कर दी। सब प्रकार से आप मौलिक हैं, भाषा में भी, विचारों में भी। किन्तु जिस प्रकार बिजली के तेज लैम्प के सामने मिट्टी के दियों का प्रकाश हलका पड़ जाता है इसी प्रकार जैनेन्द्र के आगमन से हिन्दी के कुछ प्रतिभा रखने वाले युवक लेखक अपना प्रकाश खो बैठे। अन्धाधुन्ध उन्होंने आपकी भाषा की, भावों की, यहां तक कि शब्दों तथा वाक्यों तक की नकल की और परिणाम स्वरूप अपनापन भी खो बैठे।

जैनेन्द्र कुमार की कहानियां पश्चिमी कहानियों की शैली में लिखी गयी हैं। जिस भाव को लेते हैं, उसे इतना बयान करते हैं, उसकी जरा सी बात का ऐसा वर्णन करते हैं कि उसका पूरा पूरा चित्र आंखों के सामने खिंच जाता है। कहानियां आपकी घटना-प्रधान न होकर विचार-प्रधान होती हैं।

वातायन, फांसी, एक रात, दो चिड़ियां नाम से आप के कई कहानी-संग्रह निकले हैं। परख, सुनीता और त्यागपत्र आपके तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

दुर्भाग्य की बात यह है, कि जिस तेजी से आप कहानी क्षेत्र मे आए थे, उसी तेजी से निकले जा रहे हैं। हाल ही में आप कहानी लिखना छोड़ विचारक का रूप धारण कर रहे हैं और 'जैनेन्द्र के विचार' नाम से आपके विचारों का एक संग्रह उज्जैन के प्रो० प्रभाकर माचवे के सम्पादकत्व में निकला है।

जैनेन्द्र जी का जन्म १९०५ में कौड़ियागंज (अलीगढ़) में हुआ पर आजकल आप अपने परिवार सहित दरियागंज दिल्ली में रहते हैं और शुद्ध साहित्य-सेवा करते हैं।

'अपना अपना भाग्य' जैनेन्द्र जी की अत्यन्त सुन्दर मर्मस्पर्शी रचना है।

अपना अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप से, बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अँधियारी से रँगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अंग्रेजों का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियां अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर से उधर खेल रही थीं और

कहीं कुछ अंग्रेज एक-एक लक्ष्य सामने प्रतिस्थापित कर अपनी सूई सी शक्ल की डोंगियों को मानो शर्त बाँधकर सर-पट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बन्सी पानी में डाल सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियाँ भरते हुए हॉकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट गाली गलौज भी जैसे खेल का, ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानो खत्म कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का ख्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे वे शब्द की सम्पूर्ण सचाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरत प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था न छोर। वह प्रवाह कहाँ जा रहा था और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उम्र के सब तरह के लोग उसमें थे। मानो मनुष्यता के नमूने का बाजार, सज कर, सामने से इठलाता चला जा रहा हो।

अधिकार गर्व में तने अंग्रेज उसमें थे, और चिथड़ों से सजे, घोड़ों की बाग थामें वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं।

भागते, खेलते, हँसते शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे

थे और पीली-पीली आँखें फाड़े, पिता की उँगली पकड़ कर चलते हुए अपने नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हंस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे जो बुजुर्गी को चारों तरफ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज रमणियां थीं, जो धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हंसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़ों के साथ ही साथ, ज़रा जी होते ही, किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकतीं थीं। वह दो-दो, तीन-तीन चार-चार की टोलियों में निश्शंक, निरापद, इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल लक्ष्मियां, सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचाती और सम्हालती हुई साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती से आंखें गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थीं।

इसके साथ ही भारतीय का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजी-दाँ पुरुषोपम भी थे, ज़ो नेटिव को देखकर मुंह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आँखें बिछा देते थे, और दुम

हिलाने लगते थे वैसे वह अकड़ कर चलते थे, मानो भारत-भूमि को इसी सड़क के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।

(२)

घंटे कें घंटे सरक गए। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफेद होकर जम गए। मनुष्यों का वह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वहीं-के-वहीं बैठे थे। सर्दी सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लॉन बर्फ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीप-मालिका सी जगमगा रही थीं। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह ताल उन प्रतिबिम्बियों को सौ गुणा हजार गुणा करके, उनके प्रकाश को मानो एकत्र और पूंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनियां तारों सी जान पड़ती थीं।

हमारे देखते-देखतें एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढँक दिया। रोशनियाँ मानों मर गईं। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत से पहाड़ भी इस सफेद पर्दे के पीछे छिप गए। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानो यह

घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इन घनी गहरी सफेदी में दब गया। जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैलकर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया हो। ऊपर नीचे, चारों तरफ वह निर्भेद्य सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन, चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में, कहीं से ग्यारह बार टन्-टन् हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज आ रही हो!

हम अपने-अपने होटलों के लिये चल दिये।

(३)

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वहां तो ऊपर-नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, एक कम्बल होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिलकुल किनारे पर बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुंचकर इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तरे में छिपकर सो रहना

चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, और कब थमेगी--इसका क्या कुछ ठिकाना है! और वह कैसी क्या होगी--इसका भी कुछ अन्दाज है! उन्होंने कहा--आओ, जरा यहाँ बैठें।

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे की उस भीगी, बर्फीली ठण्डी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

५--१०--१५ मिनट हो गए। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैं खिझला कर कहा--

चलिए भी.......,

अरे! जरा बैठो भी......

हाथ पकड़कर जरा बैठने के लिए जब जोर से बैठा लिया गया तो और चारा न रहा--लाचार बैठे रहना पड़ा। सनक से छुटकारा आसान न था, और वह जरा बैठना भी जरा न था।

चुप-चाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले--

देखो, वह क्या है?

मैंने देखा--कुहरे की सफेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली सी मूरत हमारी तरफ बढ़ी आ रही थी। मैंने कहा--होगा कोई।

तीन गज़ दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े बड़े बालों को खुजलता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगे सिर। एक मैली-सी कमीज लटकाये है।

पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा है--कहाँ जाना चाहता है ! उसके कदमों में जैसे कोई न अगला है, न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।

पास की चुंगी की लालटैन के छोटे से प्रकाश-वृत्त में देखा--कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है, आँखें अच्छी बड़ी पर सूनी हैं, पर माथा जैसे अभी झुरियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज दी--ए !

उसने जैसे जागकर देखा और पास आ गया।

तू कहाँ जा रहा है रे ?

उसने अपनी सूनी आंखें फाड़ दीं।

दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है ?

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

कहाँ सोयेगा ?

यहीं कहीं।

कल कहाँ सोया था ?

दुकान पर।

आज वहाँ क्यों नहीं ?

नौकरी से हटा दिया।

क्या नौकरी थी ?

सब काम एक रुपया और जूठा खाना।

फिर नौकरी करेगा ?

हाँ..........।

बाहर चलेगा ?

हां. . . .।

आज क्या खाना खाया ?

कुछ नहीं।

अब खाना मिलेगा ?

नहीं मिलेगा।

यों ही सो जायगा ?

हाँ.....।

कहाँ ?

यहीं कहीं।

इन्हीं कपड़ों से ?

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानों बोलती थीं—यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न !

माँ-बाप हैं ?

हैं।

कहाँ ?

१५ कोस दूर गाँव में।

तू भग आया ?

हाँ।

क्यों ?

मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं,--सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। माँ भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया एक साथी और था। उसी गाँव का था--मुझ से बड़ा। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।

कहाँ गया ?

मर गया।

इस जरा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई ! मुझे अचरज हुआ, दर्द हुआ, पूछा--मर गया ?

साहब ने मारा, मर गया ?

अच्छा हमारे साथ चल।

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुँचे।

वकील साहब !

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतर कर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे-चढ़े पैरों में चप्पल थीं। स्वर में हलकी सी झुझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

ओ-हो, फिर आप ! कहिये ?

आप को नौकर की जरूरत थी न ? देखिये, यह लड़का है !

कहाँ से लाये ? इसे आप जानते हैं।

जानता हूँ--यह बेईमान नहीं हो सकता।

अजी यह पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं--उठा लाये कहीं से, लो जी, यह नौकर।

मानिए, तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।

आप भी.....जी, बस खूब हैं। ऐरे गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।

आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूं!

मानें क्या खाक? आप भी...जी, अच्छा मजाक करते हैं!...अच्छा, अब हम सोने जाते हैं।

और वह चार रुपये रोज के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गए।

(४)

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर टटोला। पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे।

'क्या है?'--मैंने पूछा।

'इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था।' अँग्रेज़ी में मित्र ने कहा--'मगर दस-दस के नोट हैं।'

नोट ही शायद मेरे पास हैं,--देखूं!

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम फिर अंग्रेजी में बोलने लगे। लड़के के दांत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा--तब ?

मैंने कहा--दस का नोट ही दे दो। सकपकाकर मित्र मेरा मुंह देखने लगे--अरे यार ! बजट बिगड़ जायगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं।

तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले--

अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना ! वह 'होटल-डि-पव' जानता है ? वहीं कल १० बजे मिलेंगा ?

हाँ... कुछ काम देंगे हजूर ?

हाँ-हाँ ढूंढ़ दूंगा।

'तो जाऊं?' लड़के ने निराश आशा से पूछा !

हाँ ठण्डी साँस खींचकर फिर मित्र ने पूछा--कहां सोएगा ?

यहीं-कहीं, बेंच पर, पेड़ के नीचे--किसी दुकान की भट्टी में।

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे से मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े हवा तीखी थी--हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा——भयानक शीत है। उसके पास कम——बहुत कम कपड़े. . . !

'यह संसार है यार' मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनाई। चलो, पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।

उदास होकर मित्र ने कहा——स्वार्थ ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो——या बेहयाई !

× × ×

दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का वह बेटा——वह बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल-डि-पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल सैर खशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उसी लड़के की आस लगाते बैठे रहने की जरूरत हमने न समझीं।

मोटर में सवार होनें ही को थे कि यह समाचार मिला-पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली ! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि उस गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बरफ़ की हलकी सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया को बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबन्ध कर दिया था !

सब सुना और सोचा——अपना-अपना भाग्य।

श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह

आप इलाहाबाद के रहने वाले हैं। इस समय आपकी आयु ४३ ४४ वर्ष के लगभग होगी। पहले आप प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक पत्र लीडर के सम्पादन विभाग में काम करते थे पर अब उस से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आपकी भाषा बड़ी लालित्यपूर्ण होती है। पढ़ने में आनन्द आ जाता है। पग पग पर अलंकार और उपमाएं बखेरते जाते हैं जैसे कोई अपने पीछे मोतीहीरे बखेरता जाए। सामाजिक दुर्बलताओं पर ही आप अपनी कहानियों की नींव रखते हैं।

आपका एक उपन्यास और एक गल्प-संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

———

आदर्श

नाई के हथियारों में छुरे का जो स्थान है, समाज-सुधारक के अस्त्रों में उसकी जबान का वही स्थान है ! सुधारक में चाहे और कोई गुण हों या न हों वाक्शक्ति अत्यधिक होनी चाहिये । बाबू चोखेलाल इस लोक-प्रिय सिद्धान्त से भली-भांति परिचित थे । बाबू साहब के जीवन का अन्तिम ध्येय समाज-सुधार ही था । इसी लिए दफ्तर के काम से जो समय बचता, उसे आप अपनी तर्क-शक्ति बढ़ाने में ही लगाते थे । मित्र-मंडली में आपकी जबान खुलते ही दूसरों की जिह्वा मूक हो जाती थी । अपनी बातों से आप अपने मित्रों को मुग्ध कर रखते थे । आप को इस बात का गर्व था कि वाद-विवाद में आप को कभी कोई पराजित नहीं कर सका । इस बात पर किसी को सन्देह न था, सन्देह करने का किसी को अधिकार भी न था । किन्तु बाह्य संसार

का यह विजयी योद्धा घर के सीमा-प्रान्त में पैर रखते ही भीगी बिल्ली बन जाता था। घर में तर्क-वितर्क से काम न चलता, यहाँ न उक्ति काम देती, न प्रमाण। पशु-बल का भी यहाँ गुजर न था। विनय का जवाब व्यंग में मिलता, टेढ़ी नजर का आंसुओं से। बाबू साहब पर व्यंग का तो कुछ असर न होता, क्योंकि निश्चय में दृढ़ता आती थी, किन्तु आँसू देखते ही आप घबरा उठते थे, क्योंकि वे निर्दिष्ट पथ से विचलित करते थे।

सन्ध्या का समय था। बाबू साहब स्त्रियों को मेलों-ठेलों में ले जाने की कुरीति पर बहस करके अभी घर लौटे थे। आप की सहधर्मिणी रामप्यारी देवी रसोई-घर में तरकारी बना रही थीं, पति को देखते ही कलछुली चलाती हुई बोली-कल दसहरा है।

चोखेलाल ने अन्यमनस्कता से कहा--सुनता तो हूँ।

'सुन तो तुम हमेशा लेते हो। हाँ याद रखना नहीं जानते। एक कान से सुना दूसरे से निकाल दिया।'

बाबू साहब समझ गए कि यह किस प्रसंग की भूमिका है। उन्होंने सतर्क होकर दृढ़ता से कहा--तो क्या। हर बात की माला जपता रहूँ कि याद रहे?

'माला तुम क्या जपोगे। भगवान् का नाम लेने के लिए तो जपते ही नहीं, यह तो मामूली बात है अब तो 'धरम करम' दुनिया से उठ ही गया। अब क्या है?

चोखेलाल को दम्पति-जीवन से केवल एक शिकायत थी,

और वह थी रामप्यारी की संकीर्णता। जिस विषय पर देवी जी के अपने स्वतंत्र विचार थे, उस पर बाबू साहब का अपना निजी विचार रखना परेशानी में पड़ना था। स्त्री का दृष्टि-क्षेत्र विस्तीर्ण करने के लिये पतिदेव ने अक्सर प्रयत्न किए, परन्तु कभी सफल नहीं हुए। धर्म के विषय पर चोखेलाल रामप्यारी से आज तक किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सके थे, इस लिये यह प्रसंग छिड़ते ही उन के हृदय में रामप्यारी के प्रति अप्रसन्नता का भाव उठा था। अब रामप्यारी के व्यंग्य-वाक्यों ने अप्रसन्नता को क्रोध में परिणत कर दिया। चोखेलाल ने चिढ़कर कहा—मैं तुम से धर्म का सबक पढ़ने नहीं आया हूं।

आग में जल का एक छींटा पड़ा! रामप्यारी ने झमक कर कहा—'तुम्हें क्या पढ़ायेगा कोई, तुम तो आप ही सब पढ़ बैठे हो।'

बाबू साहब झल्लाकर बोले—तुम्हारे मारे नाक में दम है। तुम्हारी जो बातें हैं सब बे-सिर-पैर की। न इधर चलती हो न उधर।

'मेरी बातें तो सब बे-सिर-पैर की होती हैं! और तुम्हारी तो सब अजूबा होती हैं?'

'भाई, जी न खाया करो, कहो घर में आया करूं, कहो न आया करूँ।'

'हाँ, घर में क्यों आओगे? यहां तुम्हारा बैठा ही कौन है।'

चोखेलाल ने लालटेन उठाई, और बाहर जाकर अपने कमरे में प्रवेश किया। लालटेन एक ओर रखकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली, कपड़े उतारे और तख्ते पर पड़ी हुई चटाई पर लेटकर छत की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगे। आज उन्हें नवयौवन के उन दिनों की बात याद आने लगी, जब वे एक ऐसी संगिनी की कल्पना करते थे, जो जीवन-पथ पर उनके कंधे से कंधा मिलाकर चल सके। निज स्वप्नों की सृष्टि में यौवन की सारी शक्ति खर्च हो जाती है और कदाचित् जिन की पूर्ति के द्वारा मनुष्य को अक्षय आनन्द प्राप्त हो सकता है, वे इतने अनित्य क्यों हैं, उस आत्म-वेदना की दशा में इस प्रश्न पर विचार करते करते उन्हें ऐसा ज्ञान होने लगा मानो संसार में ,उनका जन्म व्यर्थ हुआ। उनके अन्तर्देश में जीवन के प्रति उदासीनता का तिमिर छा गया।

कार्य-सिद्धि के लिये रामप्यारी ने जिस उपाय की शरण ली थी, 'उसके अनौचित्य का अब उसे ज्ञान हुआ, किन्तु अपनी भूल से उसे पश्चात्ताप नहीं हुआ, पति पर क्रोध आया। विजयी-सैनिक पराजित शत्रु की किसी अवहेलना पर ध्यान नहीं देता, किन्तु असफल एक-एक बात याद करता है और झीक उठता है! क्या स्त्री की मान रक्षा करना पति का धर्म नहीं? फिर वे पग पग पर उनकी अवहेलना क्यों करते हैं, सीधे मुंह बात क्यों नहीं करते? रामप्यारी रोटी सेंक रही थी। कुछ रोटियां जल गई, कुछ कच्ची, रह गई। जैसे-तैसे खाना बनाकर वह रसोई से बाहर निकली, स्नान किया, साड़ी बदली, और सहन में पड़ी हुई चौकी पर

बैठकर पति की प्रतीक्षा करने लगी; किन्तु जब इस तरह पन्द्रह मिनट बीत गये और शत्रु की ओर से सन्धि का कोई प्रस्ताव न हुआ, तब स्वयं दबना उचित जान पड़ा। उसे भय हुआ कि कहीं वे बिना खाए ही न सो जाँय। एक मिनट में वह बाहरी बैठक में थी।

'आज खाना न खाओगे क्या !'

'नहीं' दीवार की ओर मुख किए हुये चोखेलाल ने उत्तर दिया।

'क्यों ?'

'भूख नहीं है।'

'क्यों भूख नहीं है ?'

'ऐसे ही।'

'तो क्या बिलकुल न खाओगे ?'

'नहीं।'

'अच्छी बात है, न खाओ।'

आवेश में आकर रामप्यारी कमरे से बाहर चली गई। वह जानती थी कि भूख न होने की बात एक-दम झूठ है, किन्तु इस समय अनुनय विनय न कर सकी। इस समय विशेष नम्रता दिखाना अपनी हेठी कराना होता क्या उसे पति से शिकायत का मौका न था ? उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानो इस समय उसका घोर अपमान किया गया है। रामप्यारी की आँखों में आँसू छलक आए। वह शयनागार में गई, पलंग पर गिर पड़ी और तकिए में मुंह छिपाकर

फफक-फफक कर रोने लगी। उसके प्रताड़ित हृदय पर रोष और गर्व के भाव चोटें करने लगे वे उसे कौन सा सुख दे रहे हैं, जिसका ऐसा कुटिल मूल्य लेते हैं? आज तक एक छल्ला भी लाकर नहीं दिया, जो गहने मायके से लाई थी उन्हें भी तो पहनने पाती। फिर उन्हें किस बात का तमतमा है? उसे ऐसे पति को सौंपकर उसके माता-पिता ने उस पर कैसा घोर अन्याय किया!

चोखेलाल का विचार था कि रामप्यारी अनुनय करेगी, इसीलिए उन्होंने अन्यमनस्कता का भाव धारण किया था। यह बात न थी कि उन्हें भूख न रही हो, पेट में चूहों की दौड़ बराबर जारी थी, किन्तु रूठा हुआ बालक बिना मनाए कैसे घर जाय? पाँसा उलटा पड़ा। उसने विनय न की, यों ही चली गई। तब उन्हें स्त्री के अन्तिम वाक्य याद आए-'अच्छी बात है, न खाओ' इन वाक्यों में जो चेतावनी छिपी हुई थी, उसमें सन्धि स्थापन की इच्छा नहीं, बल्कि पुनर्द्वन्द्व की चुनौती थी, चोखेलाल उन आने वाले दिनों की कल्पना करके सिहर उठे। जब वे एक ही घर में बेगानों की तरह रहेंगे जब रामप्यारी एक ओर जायगी और वह दूसरी ओर, जब इच्छा रहते हुए भी वे एक दूसरे से वार्तालाप न कर सकेंगे, जब घर की शान्ति श्री उठ जायगी और गृहस्थी एक-दम चौपट हो जायगी।

दस मिनट के बाद चोखेलाल शयनागार के सामने गए। रामप्यारी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कमरे में प्रवेश

करते समय उन्होंने खुले हुए किवाड़ को धक्का दिया, किन्तु वह दीवार की ओर मुख किए हुए लेटी ही रही, हिली भी नहीं। चोखेलाल समझ गए कि वह सो नहीं रही है। वह एक क्षण कमरे के मध्य में खड़े-खड़े पलंग पर मुंह के बल पड़ी हुई रामप्यारी की ओर देखते रहे, फिर धीरे-धीरे मुस्कराते हुए उस पलंग की ओर बढ़े जिस पर नन्हा शिशु रमेश बाल्यकाल की मीठी नींद के मजे ले रहा था। पलंग के निकट पहुँच कर चोखेलाल ने चुटकी काटी। रमेश चीख उठा। रामप्यारी फिर भी जैसी की तैसी पड़ी रही। रमेश को गोद में लेकर चोखेलाल उसे चुमकारने और थपकियाँ देने लगे, फिर रामप्यारी के पलंग पर जा बैठे। रमेश पिता की गोद से उतर कर माता की ओर रोता हुआ लपका और माँ की पीठ से लिपट कर उछलने लगा। रामप्यारी ने दीवार की ओर करवट ली और दाहिना हाथ पीछे ले जाकर रमेश को खींच लिया। माँ के पास जाते ही रमेश शान्त हो गया। स्त्री के कंधे पर हाथ रख कर पतिदेव ने पूछा---'खाना न खिलाओगी रमेश की माँ!

पति का हाथ झटक कर रामप्यारी रुंधे हुए कण्ठ से कहा---मुझे तुम्हारे खाने की जरूरत नहीं है।

रामप्यारी को बलपूर्वक अपनी ओर खींचकर चोखेलाल ने देखा, उसकी आँखों में अश्रु-धाराएं बह रही हैं। तब उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया और अपनी धोती के कोर से उसके आँसू पोंछते हुए बोले---तुम तो जरा-ज़रा सी बात में रोने लगती हो।

रामप्यारी ने सिसकते हुए कहा--आदमी इत. . .नी हँसी कर. . . .ता है कि हँसी आ...ये न कि. . . . .!

'छेड़ा तो पहले तुम्हीं ने था !'

रामप्यारी ने त्रिटक कर तीव्र स्वर से बोली---'मैंने तो नहीं, तुम ने ही पहले छेड़ा था।'

मामला फिर बढ़ता देखकर चोखेलाल ने नीति से काम लिया---खैर जाने दो. मेरा ही कसूर सही । इन बातों में क्या रक्खा है ?

'मैं तो कुछ नहीं कह रही हूं। तुम्हीं फिर छेड़ रहे हो, और अभी फिर मुझी को दोषी ठहराओगे ।'

'अच्छा बाबा, मैं अपना कसूर माने लेता हूं। सारा दोष मेरा है, तुम बिलकुल निर्दोष हो, अब तो खुश हुईं ?'

विजय-गर्व से रामप्यारी की आँखें चमकने लगीं, और उस के मुख-मंडल पर एक दिव्य मुसकान नृत्य करने लगी, समझौता हो गया !

घर में फिर शान्ति राज्य करने लगी। भोजन हो चुका था, चोखेलाल घर में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। इस समय उनकी दशा उस जवान माँझी की सी थी जो अपनी छोटी सी डोंगी में बैठा हुआ डांड चलता और मलार गाता हो ! उनके चेहरे से आनन्द और सन्तोष की रेखाएँ प्रस्फुटित हो रही थीं। रामप्यारी रमेश को लेकर आई, और उसे पति की गोद में बिठा दिया। चोखेलाल बच्चे के साथ खेलने लगे, कभी उसे चूमते, कभी उछालते, कभी हंसाते। रमेश भी कभी

हुक्के की निगाली के सहारे खड़े होने की कोशिश करता कभी पिता की मूंछे पकड़कर खींचता, कभी किलकारियाँ मारता हुआ माता की ओर लपकता। रमेश को आंचल से ढककर रामप्यारी ने कहा—कल मेला देखने के लिए क्या कहते हो? लिवा चलोगे न?

फिर वही बात छिड़ गई! किन्तु साँप का काटा रस्सी से भी डरता है। चोखेलाल ने इस बार नम्रता से कहा—लिवा चलने को तो मैं तैयार हूँ लेकिन मेरी समझ में औरतों का मेले पर जाना ठीक नहीं होता और फिर इस साल झगड़ा हो जाने का डर है।

सभी तो जा रहे हैं। प्यारेलाल का सारा घर जा रहा है। कोई मेरा ही झब्बा नोच लेगा।

'अगर दूसरे भाड़ में कूदें, तो तुम भी कूदो! यह कहाँ की बुद्धिमानी है?

'चाहे जो हो, मैं ज़रूर जाऊँगी।'

'अच्छी बात है, चलो। तुम तो हमेशा अपने मन की करती ही हो।' रामप्यारी की इच्छा-शक्ति से युद्ध करने के लिए चोखेलाल के पास न तो अब साहस था न बल।

चोखेलाल बड़े धर्म-संकट में पड़ गए। एक ओर चिर सञ्चित सिद्धांत था, दूसरी ओर स्त्री का मान-रक्षा का विचार। एक से मुँह मोड़ने में जगहँसाई थी, दूसरे से मुंह मोड़ने में नित्य की बमचख, आए दिन के ताने और उलाहने। बाह्य संसार में परास्त होने पर घर में शरण मिल सकती है, किन्तु

घर के निर्वासित को बाहर कोई नहीं पूछता। वे कोई ऐसा सुगम उपाय सोचने लगे, जिससे न सिद्धान्त की अवहेलना हो, न रामप्यारी की।

(२)

विजयादशमी का दिन था। दिन के तीन बजे थे। इक्कों के अड्डे पर बाबू चोखेलाल एक इक्के वाले से किराया तय कर रहे थे। इक्के वाले ने कहा--'बाबू साहब, बारह आने से कम न होगा। जी चाहे चलिए, जी चाहे न चलिए।'

'बारह आने तो, भाई बहुत होते हैं। आठ आने लो।'

'नहीं, बाबू, आज बारह आने से कम नहीं हो सकता।'

इतने में एक साहब दूर ही से, 'इक्केवाले, चौक चलोगे? चौक चलोगे?' की हाँक लगाते हुए आते दिखाई दिए। निकट पहुँच कर आगन्तुक सज्जन ने चोखेलाल को नमस्कार किया। चोखेलाल ने नमस्कार का उत्तर दिया। तब आगन्तुक महाशय ने दाँत निकाल कर पूछा--कहाँ की तैयारी है, जनाब?

चोखेलाल ने मुँह बनाकर उदासीनता से कहा--जरा हकीम जी के यहाँ जाना है।

'क्यों, क्यों? भई, ख़ैरियत तो है?'

'घर में कुछ तबीयत खराब हो गई है।'

चोखेलाल की ओर एक बार अविश्वास से देखकर वे महाशय आगे बढ़े और एक दूसरे इक्के वाले से बातें करने लगे। चोखेलाल की जान छूटी। एक दीर्घ-निःश्वास छोड़

कर वे इक्के पर सवार हुए और घर की ओर चले। वे नव-युग की क्रान्ति के अनुयायी अवश्य थे, किन्तु इस समय उनके हृदय में सन्देह उत्पन्न होने लगा। इस मुठभेड़ में उन्हें भावी अमंगल की सूचना दिखाई देने लगी।

राम-दल निकलने का समय हो गया था। सब्जी मण्डी के आस-पास कुछ गुण्डे, बुल्ले बदले, लट्ठ लिए, पान चबाते हुए कानाफूसी करते दिखाई देते थे। जिन सड़कों पर हो कर दल निकलने वाला था उन पर इस समय ऐसी भीड़ थी कि दुर्बल मनुष्य एक बार उस में फंस कर न हिल-डोल सकता था, न बाहर ही निकल सकता था। नगर के हिन्दुओं की सारी धार्मिकता सिमिट कर इस भीड़ में आ गई थी। जो हिन्दू मत-भेद के कारण इस में सम्मिलित न थे, वे इन धर्मावलम्बियों की दृष्टि में, या तो पक्के नास्तिक थे या 'किरस्टान'।

जब प्रतीक्षा करते-करते दर्शकों की शान्ति का अन्त हो गया, तब दल निकला। जयकारों की गगन-भेदी ध्वनि चारों ओर गूंजने लगी। इस वर्ष कोई नई बात न थी। वही घोड़े थे, वही ऊंट थे, वही चौकियाँ, वही बाजे, वही हाथी। जिस हाथी पर रामचन्द्र जी सवार थे उस पर चारों ओर से निरंतर पुष्प-वर्षा हो रही थी। फूलों की जो छड़ियाँ भाग्यवश महा-राज के श्री-चरणों से ढुलककर नीचे गिर पड़तीं, उन पर भक्त-वृन्द इस प्रकार गिरते थे मानों रत्नों पर टूट रहे हों।

दल निकल गया। रामप्यारी का हाथ पकड़े हुये बाबू

चोखेलाल हकीम निहालचन्द्र की ऊंची छत से नीचे सड़क पर उतर आये। यहाँ अभी काफी भीड़ थी। इक्का लाने की गुंजाइश न थी, न देर हो जाने पर सवारी पाने की आशा। इसलिये इसी समय अड्डे की ओर चलना तय पाया। आगे-आगे भीड़ चीरते हुए चोखेलाल चले जाते थे और पीछे-पीछे रमेश को गोद में लिये, पति का हाथ पकड़े हुए रामप्यारी। दोनों धक्के पर धक्का खा रहे। अभी वे सौ कदम गये होंगे कि सहसा उन्हें सैकड़ों आदमी गलियों से निकल-निकलकर इधर-उधर भागते हुये दिखाई देने लगे। इन्हीं भागे हुए आदमियों में वे लोग भी दिखाई देते थे, जो अभी थोड़ी देर पहले दल के साथ लट्ठ उछालते, अकड़ते चले जाते थे। चारों ओर चिल्लाहट शुरू हो गई——

'भागो, भागो! चल गई, चल गई! हिन्दू-मुसलमान में चल गई!' पीछे से भीड़ का रेला आया और रामप्यारी के हाथ से पति का हाथ छूट गया। डूबते हुए तैराक का सहारा छिन गया।

रामप्यारी बेचैन हो उठी, उसके पैर लड़खड़ाने लगे, चक्कर सा आने लगा, और निकट था कि नीचे गिर जाय और सहस्रों बदहवास पैरों के नीचे पड़ कर कुचल जाये कि सहसा उसे एक दीवार का सहारा मिल गया। वह दीवार से सटकर खड़ी हो गई और भयातुर नेत्रों से भागते हुए मनुष्यों में पति को खोजने लगी। उसके सूखे हुए मुख से बारबार निकल रहा था–'हाय राम! अब क्या करूं?' शिशु रमे

जाग पड़ा और माता के गले से लिपट कर आश्चर्य से इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार के धार्मिक झगड़ों में अबलाओं पर बदमाशों द्वारा किए गए अत्याचारों की भयोत्पादक कथाएं रामप्यारी सुन चुकी थी। आज ऐसी शोचनीय परिस्थिति में पड़ कर उस की दुष्कल्पना जागृत हो गई और उन अतीत दुर्घटनाओं के भयावह दृश्य उसके नेत्रों के सम्मुख फिरने लगे।

चोखेलाल का कहीं पता न था। हताश होकर हृदय को मजबूत करके, मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करती हुई, रामप्यारी बचाव का उपाय सोचने लगी। सामने सेठों की कोठियाँ थीं किन्तु वहां शरण मिलने की आशा न थी; सब के फाटक बन्द थे। सहसा उसकी बाईं ओर दृष्टि गई, एक पतली सूनी गली दिखाई दी। उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानों ईश्वर ने उसकी दुःख निवारणार्थ मार्ग निकाल दिया हो। उसके हृदय से एक बोझ सा उठ गया, पैरों में पैर लग गए। भीड़ अब छट गई थी। वह शीघ्रता से गली में घुसी थोड़ी दूर पर उसे रोशनी दिखाई दी। वह ठिठक गई आगे बढ़ना ठीक है या नहीं? न जाने शत्रु हों कि मित्र। किन्तु न बढ़ने में भलाई भी न थी, गली में कोई बदमाश घुस आया तब? फिर वह जी कड़ा करके धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

(३)

भीड़ के रेले में पैर उखड़ जाने पर कठिनाई से जमते हैं। बाबू चोखेलाल ने जब होश सम्हाला तब मंडी के पास थे।

उन्होंने देखा--सड़क के मोड़ पर कुछ मुसलमान गुण्डे खड़े हुए हैं और जो इक्के-दुक्के आदमी घबराहट में उधर निकल पड़ते हैं उन पर लाठियों की वर्षा होने लगती है। बाबू साहब उलटे पैर भागे और बड़ी कठिनाइयों के बाद किसी तरह उस स्थान पर पहुंचे जहाँ रामप्यारी से साथ छूट गया था; किन्तु इस समय रामप्यारी यहाँ कहीं न थी। वे भय और दुविधा से काँप उठे। उनका दिल बैठने लगा, आँखों के सामने अंधेरा छा गया वह वहीं जमीन पर बैठ गए।

सहसा एक ओर घोड़े के टापों का शब्द हुआ। चोखेलाल ने सिर उठा कर देखा, मुंशी दीनदयाल जो अभी दल के आगे-आगे थे, भागे जा रहे हैं। चोखेलाल ने चिल्ला कर कहा-

'महायश ! जरा सुनते जाइये। मैं बड़ी मुसीबत में हूं, मेरी मदद कीजिए।'

मुन्शी जी ने एक बार मुड़कर देखा, और फिर घोड़ा तेज कर दिया। किसी ने पीछे से कहा--यह है हमारे नेताओं का हाल ! अभी जरा देर पहले कैसी अकड़ में थे, लेकिन झगड़ा होता देखा और दुम दबा कर भाग निकले ! भइया ! वह रुकने वाले नहीं हैं, अब यहाँ लीडरी थोड़ी ही करनी है।

चोखेलाल ने पीछे फिर कर देखा, एक दीर्घकाय कसरती आदमी सिर से पैर तक खद्दर पहिने, लट्ठ लिए खड़ा हुआ है। उसके दाहिने और बाएं कई जवान बड़ी बड़ी लाठियाँ लिए खड़े थे। उनके चेहरों से शौर्य, आत्म-विश्वास और दृढ़-संकल्प

टपक रहा था। उस टोली के सरदार ने कहा---'क्या है महाशय ! मुझ से कहिये।'

चोखेलाल एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ कर बोले--भाई ! क्या पूछते हो ? स्त्री की हठ का मारा हुआ हूं। घर में मेला दिखाने के लिये जिद कर रही थी। मैंने बहुत समझाया, मगर वह अपनी जिद पर अड़ी रही। लाचार और कोई उपाय न देख दल दिखाने लाया था। लौटते समय में भीड़ के रेले में पड़ गया और वह पीछे छूट गई। अब उसका कहीं पता नहीं चलता। कहाँ ढूंढूँ, क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता।

'नारायन ! नारायन ! यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। इस समय सारे शहर में आग धधक रही है ऐसे बुरे समय एक असहाय हिन्दू अबला का यों अकेली रह जाना, तो बहुत बुरा हुआ।'

'भाई ! मैं तो लुट गया, कहीं का न रहा।'

सरदार ने सान्त्वना दी--'खैर, आप चिन्ता न करें। इन वीरों को देखिये। यह मेरे पसीने की जगह खून गिराने वालों में हैं। आप की इज्जत हमारी इज्जत है। अगर एक भी हिन्दू स्त्री का सतीत्व नष्ट हुआ, तो सारी हिन्दू-जाति की लाज गई। और यह धर्म पर मिटने वाले वीर जाति की लाज जाते नहीं देख सकते। बहादुरो आओ।'

होरीलाल और उसके वीर अनुयायी चोखेलाल को साथ लिये सारी रात गलियों में चक्कर काटते रहे। जहाँ कहीं आहट मिलती छिपकर सुनने लगते। कई स्थानों पर मुसलमानों

से मुठभेड़ हुई। इन अवसरों पर वे ऐसे-एसे हाथ दिखाते कि विपक्षियों के छक्के छूट जाते थे। उनके द्वारा कितने भूले-भटके पथिकों की प्राण रक्षा हुई, कितने ही घर लुटते लुटते बचे, किन्तु उनका कार्य सिद्ध न हुआ। इस तरह सारी रात खोजने पर भी रामप्यारी का कहीं पता न लगा।

सबेरा हुआ। पूर्वाकाश में सूर्य ने लाल आँख निकाली, मानो कोई स्नेही पिता अपने बच्चों को व्यर्थ झगड़ते देखकर क्रोध प्रकट कर रहा हो! हताश, मनोवेदना से आन्दोलित चोखेलाल होरीलाल के घर गए। इस समय वे अपने घर जाने का साहस न कर सके। मित्रों और पड़ोसियों से कैसे आँख मिलायगें, उनके प्रश्नों का क्या उत्तर देंगे, उस घर में कैसे पैर रक्खेंगे जिसका सब कुछ लुट गया? यह बाधायें कम न थीं। स्त्री और बच्चे की भोली सूरतें उनकी आँखों में फिर कर कलेजे पर चोटें करने लगीं।

शाम होते-होते सारे शहर में सशस्त्र सैनिकों का पहरा बैठ गया। अधिकारियों की ओर से नगर भर में मुनादी हो गई कि कहीं भीड़ जमा न हो, और सायंकाल छः बजे के बाद कोई घर से न निकले। लेकिन हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे, उन्हें इस मुनादी की क्या पर-वाह थी। यदि सड़कों पर न लड़ पाते, तो गलियों में हाथ चलाते थे। वर्षों की जङ्ग खाई हुई तलवारें और छूरियाँ निकाली जा रही थीं। कोतवाली में शव पर शव चले आते थे, किन्तु कुछ पता न चलता था किसने मारा, कहाँ मारा!

तीन दिन लड़ाई का बाजार गर्म रहा। दोनों पक्षों ने जी खोलकर हौसला निकाला, पुराने झगड़े नये किए गए, मुद्दतों के बदले चुकाए गए, इस विकट हत्याकाण्ड में कितने मनुष्य जान से मारे गए, कितने जख्मी हुए--इसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन था। इस बीच में चोखेलाल बराबर होरीलाल के घर ठहरे रहे। होरीलाल रामप्यारी को ढूंढ़ निकालने में अभी तक असफल रहे, किन्तु निराश नहीं हुए थे। वे चोखेलाल को नित्य आश्वासन देते--'बाबू साहब ! आप निश्चिन्त रहिए। एक-एक बदमाश का घर खोदकर फेंक दूँगा, या तो उनका पता लगाऊंगा या प्राण दे दूंगा।'

चौथे दिन की बात है। दिन का तीसरा पहर था और दिनों की तरह आज भी चोखेलाल होरीलाल को लेकर कोतवाली पहुंचे। विचार था, कदाचित् आज कुछ पता लगे, कोतवाली में इस समय भी फरियादियों की भीड़ लगी हुई थी। चोखेलाल और होरीलाल भी एक कोने में खड़े हो गए। सब की शिकायतें रोजनामचे में दर्ज की जाती थीं, किन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य और दुःख होता था कि इन शिकायतों पर कोई विशेष कार्यवाही नहीं की जा रही थी और कर्मचारियों के पास उन अन्याय-पीड़ित फरियादियों के लिए व्यंग्य के अतिरिक्त और कुछ न था। इस प्रकार आधा घंटा बीत गया। चोखेलाल को नैराश्य घेरने लगा। सहसा उन्होंने देखा, एक बूढ़ा मुसलमान, सामान्य वस्त्र पहने, एक छोटे से बच्चे को कंधे पर बैठाये हुए फाटक के भीतर घुसा। उसके पीछे एक स्त्री सिर से पैर तक सफेद चादर ओढ़े हुए चली आ रही थी। चोखेलाल

ने एक क्षण नवागन्तुकों को ध्यान से देखा, फिर उनकी ओर वेग से लपके।

बूढ़े मियाँ ने रमेश को चोखेलाल की गोद में देकर मुस्कराते हुए कहा—'जनाब! ये तीन रोज मेरे मेहमान रहे, आप को एहसास नहीं हो सकता कि अपने मेहमान को रुखसत करने में मुझ किस कदर रूहानी तकलीफ हो रही है लेकिन मुझे इस बात की खुशी है कि आपकी अमानत आपके सुपुर्द कर रहा हूं।'

चोखेलाल की आँखों में आँसू छलक आए। होरीलाल झपटे और बड़े मियां के गले लिपट गए, फिर कण्ठावरुद्ध होकर बोले—'मियाँ साहब! इतने बड़े नगर में आप ही एक आदमी हैं, जिसने धर्म का असली मतलब समझा है। आप सच्चे मुसलमान हैं। आप को धन्य है।'

वहां सैकड़ों आदमी खड़े थे, सभी के मुख में प्रशंसा थी, 'वाह, वाह! शराफत इसे कहते हैं—दूसरों की बहन-बेटी को अपनी बहन-बेटी समझना'।

सब के पीछे अलग, खड़ी हुई रामप्यारी चादर के भीतर ही भीतर आंखें पोंछ रही थी। इस समय उसके हृदय में आह्लाद था, कृतज्ञता थी, पश्चात्ताप था।

बूढ़े मियां ने यह बयान दिया—मेरा नाम रमजान अली है। मैं करीब ही रहता हूं, जिल्दबन्दी का काम करता हूं। जिस दिन झगड़ा शुरू हुआ, उस दिन शाम को मैं अपने घर में बैठा हुआ सितार बजा रहा था। एकाएक बाहर शोर-गुल

सुनाई देने लगा। मैंने सितार बन्द कर दी और लालटेन लेकर बाहर निकला। मैं बाहर चबूतरे पर आया ही था कि एक शरीफ घराने की औरत बगल में एक बच्चा लिए हुए सहमी हुई गली में दाखिल हुई। वह औरत थोड़ी दूर पर रुक गई। मैं चबूतरे से नीचे उतरा और करीब जाकर पूछा—'किसे ढूँढ़ती हो ?' उसने कुछ जवाब न दिया। तब मैंने कहा—'बेटी ! डरो नहीं, बताओ क्या मामला है।' उसने डरी हुई आवाज में कहा—मैं अपने पति के साथ मेला देखने आई थी। हम लोग घर लौटे जा रहे थे। इतने में झगड़े का शोर सुनाई दिया, फिर भीड़ में उनका साथ छूट गया। वह नेकजात खातून यही बाबू चोखेलाल साहब की बीबी मुसम्मात रामप्यारी देवी थी। मैं इन्हें समझा-बुझा कर अपने घर लिवा ले गया मेरे घर तीन दिन रहीं। मैंने अपने एक हिन्दू दोस्त के जरिये इनके खाने पीने का प्रबन्ध करा दिया। वह हिन्दू साहब इन्हें अपने घर में जगह देने के लिये तैयार थे लेकिन इन्होंने मेरे यहाँ ही रहना पसन्द किया। मैंने और मेरी स्त्री ने इनके मजहबी ख्यालात की पूरी इज्जत की। झगड़े की वजह से अभी तक मैं इत्तला नहीं कर सका था।'

सन्ध्या-समय बाबू चोखेलाल की मित्र-मंडली उनके घर पर जमा हुई। सब ने बाबू साहब के प्रति सहानुभूति प्रकट की। बड़ी रात तक रमजान की प्रशंसा होती रही और राज-कर्मचारियों के कुप्रबन्ध की कड़ी आलोचना। मित्रों को बिदा कर के दस बजे के लगभग चोखेलाल अन्दर गए। रामप्यारी

लोटे में जल लेकर समीप आई। हाथ-मुँह धोकर चोखेलाल ने रसोई घर में प्रवेश किया। रामप्यारी खाना परोसने लगी।

चोखेलाल ने मुस्कराते हुए पूछा--फिर मेला देखने जाओगी ?

रामप्यारी ने पति के मुख की ओर घूर कर देखा, फिर दृढ़ता से बोली--हां जाऊँगी, जरूर जाऊँगी, अगर ऐसे देवता से फ़िर भेंट हो सके।

वार खाली गया! एक क्षण चुप रह कर चोखेलाल ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ा, फिर सिर हिलाते हुए कहा--ऐसे साधु-चरित्र आदमी नित्य नहीं मिलते।

'तो फिर मेला भी हो चुका। इन तीन दिनों में मैंने वह देखा है जो फिर देखने को आंखें तरस जाएंगी। मुझे तो यह आश्चर्य होता है कि कोई गैर के साथ कैसे इतनी मुहब्बत रखा सकता है। उन लोगों ने मेरी कितनी खातिर की मेरे लिए घर का एक हिस्सा खाली कर दिया, एक हिन्दू पड़ोसी के यहाँ से बर्तन ले आए, हर समय पूछते रहते थे किसी चीज की जरूरत तो नहीं है बेटी, इतनी खातिर कोई अपना कुटुम्बी भी न कर सकता।

चोखेलाल शिर झुका कर भोजन करने लगे।

(४)

रमजान अली चोखेलाल के घर के से आदमी हो गए। वे उनके यहाँ सप्ताह में दो बार अवश्य जाते और जब जाते, तो रमेश के लिए कोई न कोई खिलौना अवश्य लेते जाते।

रामप्यारी बहुत मना करती, किन्तु वे न मानते। खिलौनों का एक अच्छा ढेर लग गया था।

आज चोखेलाल के घर जाते समय रमज़ान ने बाज़ार में एक नया जापानी खिलौना देखा, चट खरीद लिया।

दरवाजे के बाहर से रमज़ान ने आवाज लगाई—रमेश ! भइया रमेश !

रामप्यारी ने अन्दर से कहा—चले आइए अब्बा ! दरवाजा खुला है।

रमज़ान ने घर में प्रवेश किया। जल्दी से सहन में पलंग बिछाकर रामप्यारी रमज़ान के पैर छूने को बढ़ी।

'यह क्या करती हो, बेटी ?'

रामप्यारी ने इस आपत्ति पर कुछ ध्यान न दिया। तब आशीर्वाद देकर रमज़ान पलंग पर बैठ गए। खिलौने की ओर देखकर रामप्यारी ने कहा—अब्बा ! क्यों फिजूल पैसा बर्बाद करते हो ? खिलौने तो ढेरों रक्खे हैं।

रमजान ने कुछ उत्तर न दिया। रामप्यारी ताड़ गई कि उसका बार-बार मना करना उन्हें बुरा लगता है। वह कमरे में गई और रमेश को उठा लाई। रमजान को देखते ही रमेश उसकी गोद से उतर पड़ा और उनकी सफेद दाढ़ी से खेलने लगा। फिर खिलौना देखते ही उनकी गोद स उतर कर उसकी ओर लपका।

रामप्यारी ने सकुचाते हुए पूछा—अब्बा एक बात पूछूं, बताओगे ?

'क्या है बेटी ?'

रामप्यारी ने दीवार के सहारे खड़े-खड़े कहा—आपने उस दिन हमारी मदद क्यों की थी ? आप के जात वाले तो हम लोगों से कीना रखते हैं।

रमज़ान ने रमेश को अपनी गोद में लिया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—बेटी, इसका जवाब तो रमेश ही दे सकता है। मेरे इस नन्हें बादशाह से पूछो। इसी ने उस दिन मेरे ऊपर जादू डाला था। इसी ने मुझे शराफ़त का सबक दिया, वर्ना में तो बुराइयों में फंसा हुआ आदमी हूं बेटी ! तुम समझती हो, मैं पैसा बर्बाद करता हूं लेकिन तुम्हारा यह ख्याल गलत है। मैं तो अपने बादशाह को नजरें देता हूं। बीस साल हुए मेरा हामिद मुझ से छीन लिया गया था। लेकिन मैं खुशनसीब हूं कि मेरा खोया हुआ बादशाह उस दिन मुझे फिर वापश मिल गया ? मेरे जादूगर ! मेरे बादशाह !

स्नेह विह्वल होकर रमज़ान रमेश को बार-बार चूमने लगे। अनन्त पथ पर भटकता हुआ बटोही अपने खोए हुए साथी को पाकर स्वर्गिक आह्लाद से आन्दोलित हो उठा। कल और आज का मध्यवर्ती समय आज की सत्प्रेरणा से प्रभावान्वित होकर विस्मृति के वक्ष में विलीन हो गया।

रामप्यारी का हृदय-कृतज्ञता से भर गया। उस की आँखों में श्रद्धा और भक्ति के आंसू छलकने लगे। उसे ऐसा

ज्ञात होने लगा मानो रमज़ान इस संसार का नहीं, किसी दूसरे दिव्य लोक का निवासी है।

फिर रमजान की ओर देखते-देखते उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वृद्धावस्था के उस विकृत रूप में सरल निर्बोध शैशव किलकारियाँ मार रहा है! उस समय उसका नारी-हृदय अगाध मातृ-वात्सल्य लेकर रमज़ान और रमेश की ओर वेग से प्रवाहित हो चला।

विनोदशंकर व्यास

व्यास जी का जन्म १९०१ में काशी के एक सम्पन्न घराने में हुआ। आपके दादा बनारस के एक बड़े रईस थे। पठन पाठन में आपकी रुचि न थी, एँट्रेंस भी पास न किया, माँ बाप समझते थे पुत्र अवारा हो गया है। पर विधाता ने व्यास जी को साहित्य-सेवा के लिये बनाया था। १९२५ में आपने लिखना आरम्भ किया और अब तक आपके पांच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

व्यास जी छोटी छोटी, हृदयस्पर्शी कहानियां लिखने में बड़े कुशल हैं। उन्हें पढ़कर हृदय पर चोट लगती है, कहीं कहीं तो नाटक का सा आनन्द आ जाता है। आपकी कहानियां प्रायः भाव प्रधान होती हैं। 'मधुकरी' नाम से हिन्दी के समस्त गल्प-लेखकों की कहानियों का संग्रह निकाल कर आपने हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया है।

'बदला' आपकी सर्वोत्तम रचना है। बदले का जो आदर्श आपने उपस्थित किया है, यदि संसार उस पर चले तो दुनिया सचमुच रहने की जगह बन जाये।

स्वर्गीय प्रसाद जी के आदर्श पर भाव प्रधान कहानियां लिखने में आप विशेष सिद्धहस्त हैं।

बदला

देश में अकाल पड़ा था। गाँव-देहात उजड़ा हुआ था। दिन अँधेरी रात की तरह भयानक मालूम पड़ता। लोग दानों के लिये तरसते, भूख से छटपटाते और पैसे के लिये रोते थे। ओह! दैव कितना भीषण परिहास था! आँखें धँस गई थीं, ठोकरें बैठ गई थीं और शरीर निर्बल हो गया था।

गाँव के लोग कहते, ईश्वर का कोप है। बरसात आकाश की ओर देखते ही कटी, जाड़ा ठिठुरते हुए कटा और गरमी अब धूप की ज्वाला से कट रही है। कैसा अद्भुत खेल है! सचमुच अकाल था। भूमि अपना सूना आँचल फैलाए हुए बैठी थी।

वह गाँव सिसक रहा था। चन्द्रमा ने झोंपड़ियों के उस टिमटिमाते हुए प्रकाश को चुरा लिया था। चाँदनी अपनी छाया में बैठाकर उन झोंपड़ियों से उसकी कहानी सुनती।

सियार बोल रहे थे। कुत्ते भूंक रहे थे। सन्नाटा था। रजनी तांडव-नृत्य देख रही थी।

मोती अपनी उदास झोंपड़ी में पड़ा सोचता था। रात आँखों से खूब लड़ी थी। जागते ही कटी। जमींदार को मालगुजारी देनी है। खेत बेदखल हो जायगा, घर उजड़ जायगा, सब समाप्त हो जायगा।

मोती गरीब था। सबका ताबेदार नौकर था। वह अभागा अछूत था।

भैंस, बकरी और बैल तो कर्ज में ही नीलाम हो गए थे। खेत भी बेदखल हो गया। झोपड़ी जर्जर हो गई थी। मोती के पास केवल लाल और सफेद गाय बच गई थी। वह उसे बहुत प्यार करता था। खेत में काम करते हुए जब उसे मोती पुकारता—लाली! वह दौड़ती हुई पहुंचती। पालतू कुत्ते की तरह वह गाय मोती के साथ फिरती। नौ महीने की बछिया थी, तभी से उसने उसको पाला था। इससे मोती को उसका बड़ा मोह था।

सोना—अपनी पत्नी—को पीहर पहुंचाकर मोती बम्बई जायगा नौकरी करेगा, पैसा पैदा करेगा, भूखों मरने से बचेगा।

रेल के टिकट के लिये पैसे न थे। मोती लाली को बेचेगा। सोना ने लाली को न बेचने का अनुरोध किया, किन्तु मोती विवश था। रुपये कहाँ से आते? सब कुछ चला गया था, बच गई थी लाली! बम्बई के भाड़े के लिये वह भी निकल जायगी।

अत्याचार सहन करते-करते मोती कठोर हो गया था। वह खुद बिक जाता, मगर लाली को न बेचता, किन्तु मोती सबसे हाथ धो बैठा था। उसका दिल पत्थर हो गया था।

सोना का बाप एक दूसरे गाँव का चौकीदार था। बस पाँच बीघा भूमि थी। सोना ने वहीं चलकर रहने को कहा था। उसके पिता ने भी इस पर जोर दिया। किन्तु ससुराल की रोटी तोड़ना मोती को पसन्द न था। वह बड़ी आन का आदमी था।

सोना को पीहर पहुंचाकर मोती लौट आया। चलते समय सोना ने आँसू बहाते हुए कहा—'चिट्ठी भेजना और हो सके तो साल-छः महीने में चले आना।'

'ईश्वर की जैसी इच्छा!'—कहकर मोती चला आया।

मोती के घर में भगवान तिवारी का बड़ा मान था। गाँव में वह बड़े सीधे, सरल ब्राह्मण थे। मोती की लाली उन्हें बड़ी पसन्द थी। मार्ग में जब कभी देखते तो उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पुचकारते। मोती जानता था, लाली उनके यहाँ सुखी रहेगी। अतएव लाली को लेकर उनके द्वार पर पहुंचा। प्रणाम किया।

उन्होंने पूछा—कहो मोती, कैसे चले?

'महाराज' सब कुछ चला गया, अब मैं भी बम्बई जा रहा हूं।'—मोती ने उत्तर दिया।

'क्या करोगे, दिन का फेर बड़ा विचित्र होता है। जमींदार बड़ा दुष्ट है अन्धेर नगरी है। कारिन्दा जो चाहता है करता है।

जमींदार को अपनी मौज से ही फुर्सत नहीं मिलती ।'—कहकर तिवारी जी लाली की ओर देखने लगे ।

'भाग्य में जो लिखा था, सो हुआ । अब आप लोगों का अशीर्वाद लेकर जाता हूं टिकट के रुपये नहीं हैं । लाली को लेकर आया हूं, २०) रुपये की जरूरत है । लाली आपके यहाँ रहेगी ।'—मोती ने बड़ी निराशा से कहा ।

'तुम्हारे ऊपर उसे तनिक भी दया न आई, उजाड़ कर ही छोड़ा । कब जाओगे ?'—विचार करते हुए तिवारी जी ने कहा ।

'आज ही !

उन्होंने घर से २०) रुपये लाकर दिये, मोती रुपये लेकर लाली की तरफ देखने लगा । लाली उसकी ओर देख रही थी । बड़ा करुण दृश्य था । मोती ने लाली के गले में हाथ डालकर उसे चूम लिया और चला गया ।

कुछ दूर जाने पर बाँ···आँ···शब्द सुनाई पड़ा । मोती ने सोचा, लाली पुकार रही है; किन्तु हृदय पर पत्थर रखकर यह कहते हुए चला गया—'लाली, तुम्हारे भाग्य से मैं पैसे वाला हो जाता तो· · ·'

मोती बरबाद हो गया उजड़ गया !

(२)

मोती बम्बई पहुंच गया था । वह भौंचक्का होकर शहर देखने लगा । जैसे किसी भूल-भुलैया में भटकने लगा ।

देहाती आदमी, किसी से परिचित न था। मोटर की भों-भों और घोड़ा-गाड़ी की हटो-बचो से घबड़ा उठा था। 'कहाँ जाय ? क्या करे ? नौकरी कहां मिलेगी ?' ये ही प्रश्न बार-बार उठते। कई दिन बीत गये। साहस नहीं होता था, बात कैसे करे ?

सन्ध्या हो चली थी। मोती भूखा था। नौकरी की खोज में वह नगर से कुछ दूर चला आया था। एक जगह खड़ा होकर देखने लगा। बड़ा भारी हाता था, उसी में गाय भैंसें बंधी थीं। उसने अपने ही जैसे मैले वस्त्रों में कुछ काम करने वालों को देखा। सलाम-बन्दगी हुई। परिचय हुआ। मोती ने अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसके प्रति उन लोगों की सहानुभूति हुई। उसी दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिली।

साहब की 'डेरी' थी। दूध का व्यवसाय होता था। मोती को दूध दोहने का काम मिला था। वह इस काम में निपुण भी था। साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी।

दिन-पर-दिन बीतने लगे। वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य्य करता। अपने नम्र व्यवहार के कारण सबसे हिल-मिल गया था। साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते। उसका विश्वास जमता गया।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला था। मोती का हाल पूछा था, रुपये मांगे थे, और कब आवेगा, यह भी पूछा था।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया–मैं अब बड़े सुख से यहां हूं। साहब के पास रुपया जमाकर रहा हूं। दूध के व्यवसाय में यहां बड़ा लाभ है, मैं अच्छी तरह उसे जान गया हूं। कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूंगा। फिर खुद इसका कारबार करूंगा। बड़ा लाभ होगा, तब तुमको भी बुला लूंगा।

(३)

दो वर्ष बीत गए।

दिल्ली से मोती ने गायें और भैंसे मंगवाईं। देखते-देखते उसका भाग्य चमका। सफलता से घनिष्ठता हो चली। दूध-मक्खन और घी बेचता। उसकी आंखें खुल गईं। दानों के लिए तरसने वाला मोती अब पैसे जोड़ने लगा।

अपने एक सम्बन्धी के साथ सोना भी बम्बई चली गई। मोती को अब रोटी का कष्ट न होता। बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा। मोती दिन-रात अपने काम में व्यस्त रहता, किन्तु सोना को शहर का जीवन पसन्द न आया। रुपयों के लोभ से उसे सन्तुष्ट रहना पड़ता।

दस बर्ष बीत गए।

साहब अपने देश चला गया। मोती ने उसकी डेरी ले ली थी। वह बड़ा व्यवसायी हो गया था। वह अब मोती से मोतीलाल हो गया। लेकिन, बम्बई के जलवायु से वह बराबर अस्वस्थ रहता।

सोना ने एक दिन कहा—'तुम दिन-पर-दिन दुबले होते

जाते हो। अब यहाँ अच्छा भी नहीं लगता। ईश्वर ने बहुत धन दे दिया। चलो अब घर चलें, खेती करेंगे, यहाँ के इस जीवन में कोई सुख नहीं मालूम होता।'

सोना की इस बात पर मोती कभी-कभी विचार करता।

उसके मन में यह बात जम गई। एक दिन उसने भी कहा—चलो, अब यहाँ नहीं रहूंगा। बहुत धन लेकर अब क्या करना है? सचमुच वे दिन कितने अच्छे थे जब दिन भर खेत में काम करके सन्ध्या समय अपनी झोंपड़ी पर लौटते थे। वह सब कुछ तो अब सपना हो गया!

कुछ दिन के बाद मोती ने अपना कारबार बन्द कर दिया। एक सेठ के हाथ सब बेंचकर रुपये एकत्र कर लिये!

सोना—कुल कितना है?

मोती ने कहा—एक लाख से कुछ अधिक!

सोना पुतली की तरह मोती की ओर देखने लगी। उसी दिन दोनों चल पड़े।

(४)

बड़ी सरल सन्ध्या थी। एक युग के बाद मोती घर लौट आया था। उसके खँड़हर पर अब एक सुन्दर मकान बन रहा था। बड़ा परिवर्तन हो गया था। पैसे का प्रभाव था, गाँव के लोग मोती को घेरे बैठे थे। वह अपना वृत्तान्त सुना रहा था। उन्हीं लोगों की बात चीत से मोती को मालूम हुआ कि जमींदार पतन के मार्ग की सीमा पर पहुंच गया है।

लाली को देखकर मोती दुःखी हुआ वह बूढ़ी हो गई थी। अब दूध नहीं देती थी। उसकी ठठरियाँ निकल आई थीं। मोती उस दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहां ले आया।

आज गांव की नीलामी थी। जमींदार की छावनी पर डुग्गी बज रही थी। बड़े-बड़े महाजन एकत्र हुए थे। विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ जमींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था।

मोती को भी समाचार मिला। वह बड़ा उदास था। नोटों का बंडल बांधकर वह निकला। सोना ने समझा, मोती नीलाम में गांव खरीदेगा। गांव के लोग भी इसका पहले से अनुमान कर रहे थे।

मोती नीलाम की बोली सुन रहा था। पूर्वकाल के भयानक दिन उसकी आँखों के सामने फिर गये। उसका हृदय कांपने लगा। सामने ही जमींदार आँखें नीची किये बैठा था। मोती अपने को संभाल न सका, उसने तत्काल जमींदार के चरणों पर नोटों का बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुःख भोग चुका हूं। भगवान न करे, क़िसी को यह दिन देखना पड़े, लीजिये, इनसे अपना गांव बचा लीजिये। आप न होते तो मेरे दिन भी न बदलते। आप के कारण ही आज मैं रुपया जोड़ सका हूं। अतएव यह सब आपका ही है।

जमींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

—:o:—

श्रीवाचस्पति पाठक

पाठक जी जीवन की नन्हीं बातों के चित्र खींचने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कहानियों में प्लाट की प्रधानता चाहे न हो पर विचारों की कमी उनमें नहीं। जीवन से छोटी-छोटी घटनाएं लेकर मनोवैज्ञानिक ढंग से उनका विश्लेषण करके सामने रख देते हैं। भाषा उनकी सरल और बोध गम्य होती है, शैली आकर्षक और मार्मिक। 'द्वादशी' और 'प्रदीप' नाम से आपके दो संग्रह भारती भंडार' से निकल चुके हैं।

'मुन्नू' आप की शैली का एक उत्तम नमूना है। बच्चों के मनोविज्ञान, उनकी सरलता और भोलेपन का कितना सुन्दर चित्र!

मुन्नू

कल ही की बात है। गर्मी से व्याकुल होकर मैं अपने कमरे में लेटा था। मुन्नू ने मेरा पता पा लिया। वह ठीक ही समझता था कि मैं जाग रहा हूंगा। उसने दरवाजे के पास आकर ज़रा सा अपना मुंह निकाला और कहा--झां...ं।

मैं अब उसकी उपेक्षा न कर सकता था। उसके विश्वास के अनुसार ही मैंने धीरे से कहा झां...ं।

वह अभी छिप गया था। अभी दो एक बार वह ऐसा ही करना चाहता था, पर मैंने पुकारा--मुन्नू! मेरा राजा! आ बेटा! तुझे अच्छी सी तस्बीर तो दिखाऊं!

वह दौड़ आया। एकदम आकर मेरे ऊपर झूल पड़ा। पास पड़ी पत्रिका के पन्ने उलट कर मैंने कहा--देख! देख!!

वह खूब हंसनें लगा--हा:-हा:-हा: । उसके छोटे-छोटे चमकीले दाँत उसकी हंसी को चमाचम कर रहे थे।

मैंने पूछा--है न अच्छी ।

वह खिलखिलाकर हंस पड़ा। उस रंगीन चित्र की मोहकता का उस पर असीम अधिकार था। वह अभी उसे खूब देखना चाहता था पर, मैंने पत्रिका के पन्ने उलटते हुए कहा और देखो, ये ।

उसकी वह हंसी बढ़ती ही गयी । रंगीन चित्रों पर वह खूब ठहाके लगाता । मैं उनके लिये रुकता भी अधिक था। हंसी के साथ ही साथ वह अपनी तोतली वाणी में पूछता भी जाता था--कौन है ? क्या है ?--मेरे बतलाने को वह कुछ समझता तो था नहीं। उसको आती थी अपनी हंसी।

मेरे लिये अब इस प्रसंग में आकर्षण न रह गया था।

इसीलिये उससे बातें भी न हो पाती थीं। हां-हां, एक बात और भी मैंने सोची । दूसरों ने उसकी नासमझी का एक और फायदा उठाया है । उसे महिलाओं के चित्रों को दिखलाकर खूब भुठलाया होगा। यह तो तेरी माँ है मुन्नू ! यह नानी...! चाची...! भाभी...! आदि कहा होगा । मैंने ऐसा कई बार देखा है । इसीलिये उसके केवल हंसने के कारण मैंने ऐसा अनुमान लगाया । खैर !

मैं उसे लिये आराम कुर्सी पर आ गया । मुझे बातें करके अपने सोने के लिये उसे खुशकर जल्द भेजना भी था। बच्चों को तो प्यार से ही संतोष मिलता है। वे इसी की कीमत

समझते हैं। मैं यद्यपि इसको उन्हें गुदगुदा ही कर जान पाता हूं फिर भी उनकी प्रसन्नता उन्हें मिल जाती है। मैंने गुद-गुदाना और उससे बातें करना शुरू कर दिया। तुम ने खाना खा लिया? क्या खाया? इसके चारों ओर उसकी हंसी गरज की तरह गुंथती चली जा रही थी।

इतने में वह काली सी बिल्ली दौड़ गई। बस, फिर क्या था, उसे भी एक बात मिल गई। उसने अपना भला सा मुंह बनाया और कहा--म्याऊं और शायद किसी से सुनी हुई बात लेकर कहा--यह शेर की मौसी है न?

यह...यह मुन्नू! मैंने जैसे डरकर पूछा तब तो यह बड़ी बुरी बात है।

मेरी डर से चढ़ी हुई आंखें देखकर आश्चर्य से उसने कहा--अरे! यह बुरी बात है? वह फिर हंस पड़ा।

और क्या--मैंने बतलाया--तुम नहीं जानते? शेर हाथियों को चपतें मारकर गिरा देता है, उन्हें फाड़ डालता है, खा जाता है। हम सब उससे बचते हैं। फिर यह उसकी मौसी कितनी कातिल होगी? पूरा डरा हुआ बनकर मैंने कहा--मुझे बड़ा डर लगता है मुन्नू।

हा..हा...हा...और मुझे?--उसने पूछा।

तुम तो राजा की तरह सचमुच नहीं डरते मुन्नू!--मैंने कहा।

मेरी यह बात सुनकर वह प्रसन्न हो गया। उसकी वीरता की जो उपमा मैंने दी थी उससे भी वह प्रभावित

जान पड़ा। उसने इठला कर बड़े चाव से कहा—मैं, अच्छा. . .अच्छा राजा हूं न ?

हूं !—कह कर मैं हंस दिया था। पर उसी समय मैंने उसे समझाया।—तुम तो राजा हो ! फिर ? अभी दोपहर में जाकर सो रहो। अब शाम को हम तुम दोनों मिलकर बढ़िया कपड़े पहन कर टहलने चलेंग। यह है न अच्छी सी बात ? और वहाँ से खिलौने भी लायेंगे।

अब की मुन्नू सब बातें चुपचाप सुनता रहा। राजा ही की तरह सब समझना भी चाहता था। पर, अभी उसके दिल में इसकी सार्थकता न रही होगी ? और फिर इस प्यार के बीच मेरे हृदय की असुविधा का छल वह छोटा सा बच्चा कहां समझता ? उसने मेरे सम्पूर्ण कथन को जैसे सुना ही नहीं। झट बोल उठा—और बच्चा ?

मुझे हँसी आ गई। इन नन्हें से बच्चे के मन में कैसा छोटा सा एक सात्विक गर्व है ! फिर भी गर्व की इयत्ता ही कितनी ? वह अपने छोटे कीड़े से भाई को एकदम अप-दार्थ गुन रहा है। उस हंसी को तो मैं पी गया। ठीक सम-झदार आदमी की तरह गम्भीरता से मैंने उसका समर्थन किया।—वह तो रोता है। तुम सा राजा तो है नहीं ! वह भला हम सब के साथ चलने लायक है ?

मुन्नू का हृदय हर्षातिरेक से भर गया। यद्यपि उसे अपने बड़प्पन की गरिमा का यथार्थ बोध आश्चर्यान्वित भी किये था। उसका मुंह खुल पड़ा था। वे छोटे-छोटे दांत अपनी

कतारों में हंसी छिपाये चमक रहे थे। फिर मौका पाकर कहा—तो जाओ मुन्नू अब सो रहो।

अब की वह सकपकाया। कुछ उठने की भी चेष्टा की। तब तक उसकी दृष्टि पड़ गई मेरे कैलेण्डर पर। वह खूब ठहाका मार कर एक बार फिर हँसा।...अरे यह क्या...? प्रश्न के साथ ही अपने आश्चर्यान्वित मुँह की उसने रेखाएँ बिगाड़ कर उसे बुढ़िया के भाव प्रदर्शित करने के उपयुक्त कर लिया। उसने उस व्यंग ही में मेरी ओर देखकर उत्तर माँगा।

उसके देखने के साथ ही मेरी दृष्टि उस कैलेण्डर पर पड़ गई। मेरी कुर्सी की बगल में टेबिल के सामने वाली दीवार पर एक लाइफ इन्श्योरेन्स सोसायटी का कैलेण्डर टँगा रहता था। चित्रकार ने उसमें किसी महाराष्ट्र कमरे का चित्र अंकित किया है। उस गरीब के घर में सिवा एक गांधी जी के चित्र और कुर्सी-टेबिल के कुछ भी नहीं। वह एक कुर्सी पर बैठकर अपने बीमे का सार्टिफिकेट देख रहा है। प्राप्य धन की प्रसन्नता में अपने आजन्म की भ्रान्ति को खोकर वह गलित पलित दन्तहीन बुड्ढ़ा जैसे पहले पहल हंसा है। वह जैसे अंधेरी रात्रि के बीच चन्द्रमा के प्रकाश में आ गया। उसकी बुढ़िया भी उसके कन्धों पर हाथ रख कर उस सार्टिफिकेट को—सतृष्ण नयनों से देख रहीं है। दोनों के मुख की स्निग्ध, प्रसन्न और सात्विक हंसी उस चित्र की जान है। पर, मुन्नू ने तो केवल उसके वृद्धत्व का रस

लिया। उसने व्यंग किया। अपनी विजय की किलकारी से सब कुछ गुंजा दिया। उसने पूछा--अरे, यह क्या?

मैंने मुस्करा कर कहा--अरे, हाँ मुन्नू! यह तो बुढ़िया है।--मैं जानता था कि उसके कोष में इस शब्द का विशेष अर्थ है।

यह क्या करती है?--उसने पूछा।

शायद वह कुछ वैसी ही बात सुनना चाहता होगा। मुझे एक चाल सूझ गयी। विनोद के लिये तो अच्छी ही थी। किन्तु उससे तो मुन्नू का यह मिलना ही मेरे मन में अन्त तक के लिये एक सुखद-स्मृति बन गया है।

--कान्त! मैंने गम्भीर बन कर कहा--मेरी रखवाली करती है।

उसने समझा नहीं। इसलिये फिर हंसकर पूछा--क्या?

तुम नहीं समझे? अब की मैंने उसे समझाया। जब मैं नहीं रहता या मैं सोता रहता हूं, उस समय यदि कोई यहाँ आकर शरारत करे, शोर करे तो तुम जानते हो यह क्या करेगी? मैंने जरा रुककर उसकी ओर देखकर कहा--यह उसे पकड़ रखेगी।

मुन्नू कुछ सोच में तो जरूर पड़ गया। पर हंसा। जैसे वह इस तथ्य को समझता है। पर, यह बात उसे बुरी मालूम हुई। और फिर मुझे मुन्नू के अधिकार की रक्षा करके ही जैसे यह बात कहनी चाहिये थी। इसी लिये उसने पूछा--सबको?

और क्या ? मैंनें कहा--यह क्या किसी से डरती है ? हम को भी पकड़ेगी। अब की उसने उसे स्पष्ट करना चाहा। उसके मुख पर इसकी समीक्षा थी।

तुम तो शरारत करते नहीं मुन्नू। मैंने उसे याद दिलाया--तुम तो राजा हो।

मुन्नू को धैर्य मिल गया। और उसका अधिकार भी स्पष्ट। उसने एक सन्तोष की सांस ली और जैसे पूरा प्रसन्न होकर बैठ गया।

अब मैं उठा। उससे मैंने कहा--अच्छा अब जाओ सो रहो। तब न चलेंगे शाम को टहलने।

वह सीधे मेरे आंगन की ओर निकल भागा। मैं भी बिस्तरे पर आकर नींद बुलाने के लिये पत्रिका के पन्ने उलटने लगा। उस बन्द कमरे में दिन का धूमिल प्रकाश मेरे सोने और पढ़ने दोनों के लिये अनुकूल था।

चार छः दस मिनट और बस। उसका कहीं मन न लगा। वह जिस सम्मान, मित्रता-पूर्ण प्रेम और अधिकार का उपयोग कर गया था उससे चोखा रंग तत्काल कोई चढ़ा कैसे पाता ? वह स्वतन्त्र वायु की लहरों की भाँति घूम पड़ा। वह मेरे कमरे के भीतर दरवाजे के पास आ गया। कुछ बोला नहीं, पर किवाड़ जरा सा जरूर हटाया। उसकी मीं... ईं की आवाज और बस, वह हट गया। अपने सोने में बाधा पड़ने से मैं शायद बिगड़ूं, सोचा होगा। चुप रह गया।

मुझे ऐसी नींद तो आती ही नहीं। मुझे उठना ही पड़ता

है। अपने उड़ने वाले मस्तिष्क को थका देने के लिए पढ़ने की कवायद करनी पड़ती है। सो तो अभी पूरी नहीं हुई थी। मेरे मन में उसकी हरएक हरकत जागृत होने लगी। वह अभी वहीं खड़ा है। ठीक दरवाजे के पास। वह जैसे मेरी आहट ले रहा है। मुन्नू... मुन्नू... ! लो शशी भी आ गई। धम...... धम.... अब दोनों—मुन्नू और शशी—पास पास खड़े थे।

शशी फिर कुछ बोलना चाहती रही होगी। वह सन्देह में कैसे रहती। पर उसे मुन्नू ने रोका। चुप रह रे शशी! उसने गला दबाकर, जैसे और कोई न सुने और धीरे से कहा। क्योंकि वह तो उस समय जैसे किसी गूढ़ व्यापार में लगा था।

शशी तो अद्भुत चंचल लड़की है। उससे कैसे रहा जाता फिर उसने पूछा ही—क्या है मुन्नू ?

इसमें बुढ़िया है। मुन्नू ने फुसफुसाकर, पर उत्तेजित स्वर में कहा—तू मानेगी नहीं ? उसने बड़े की तरह डांटा उसका उसके मन में जैसे कोई भय ही नहीं।

पर, शशी ने माना नहीं। उसकी बात खतम होते होते वह उसमें झाकने के लिये दरवाजा खोलकर बढ़ी। पर मुन्नू ने खींचकर कहा—अरे, दादा सोते हैं ! मार खायगी उसने एक और भय बतलाया। तब तक उसने झांक ही लिया कहा—बुढ़िया कहां है।

मैं चुपचाप इसी फुसफुस को सुन रहा था। मुझे व

हंसी आई। पर, मैं बोला नहीं। मुन्नू अपनी निर्भयता दिखलाकर पूछ रहा था--तु देखेगी बुढ़िया ?...अच्छा।

वह बहुत सजग होकर भीतर घुसा। शायद उसे मेरा भी ख्याल रहा हो। पर मैं तो ईंजीनियर की आड़ में था! शशी को मेरी बात याद ही नहीं रही। वह मुन्नू से पहिले ही जानती थी कि यहाँ कुछ नहीं।

क्षण भर के लिए मुन्नू रुका। इधर उधर देखकर उसने उसे जैसे बेवकूफ बनाकर--देखेगी ? देख! उसने मेरी वहाँ पड़ी हुई छड़ी कैलेण्डर की तरफ बढ़ा दी।

अब शशी के लिए असह्य हो गया। उसने कहा--यह तो तस्बीर है। तुम इसी से डरते रहे मुन्नू! वह उसे उतारने के लिए बढ़ी। खींच भी लिया।

शशी! मुन्नू धीरे से चिल्लाया। जैसे वह कहना चाहता था कि तू तो है बेवकूफ! पर उत्तेजना में उससे तर्क न किया गया। उसने झटके से उसे छीन लिया। और समझे? उसने उस कैलेण्डर को फाड़कर क्रोध से शशी के ऊपर फेंक दिया वह जैसे सचमुच उसे झुठला रहा था।

शशी डरी नहीं। वह हंसी, मुन्नू भी अपने को रोक न सका। एक साथ दोनों हंस पड़े।

अपनी ही हंसी से दोनों जैसे जाग गये। सुधि आ गई होगी। विना रुके, वे भाग गये। तब से शशी तो एकाध बार दिखलाई भी पड़ गई है पर मुन्नू तो जैसे मेरी दृष्टि से बचता रहता है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

आधुनिक कथा-साहित्य में श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार ने अपनी सरस, मनोरंजक तथा कलापूर्ण कहानियों के कारण एक गौरव-पूर्ण स्थान बना लिया है। एक लेखक ने हाल ही में लिखा कि कहानीकार की अपेक्षा चन्द्रगुप्त कहानी के समालोचक ज्यादा है। पर यदि आपकी कहानियों का बारीकी से अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि कहानी का समालोचक होना ही आपकी कहानियों को कला की दृष्टि से पूर्ण बनाता है। भाषा आपकी सरल हृदयग्राही और बोध-गम्य होती है और वर्णन शैली आकर्षक !

चन्द्रगुप्त जी का जन्म १९०६ में पश्चिमोत्तर पंजाब के एक गांव कोटअद्दू में हुआ। शिक्षा आपने गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में प्राप्त की और वहां से विद्यालंकार की उपाधि लेकर आप वहीं रिसर्च स्कालर नियुक्त कर दिए गए। १९३२ में आपने लाहौर में 'विश्वसाहित्य ग्रंथमाला' का प्रकाशन आरम्भ किया। चन्द्रकला, भय का राज्य और अमावस नाम से, आप के तीन कहानी संग्रह निकल चुके हैं अशोक नाम से, आप का एक नाटक भी निकला है। आप ने पहले-पहल १९२८ में हिन्दी में कहानी लिखनी आरम्भ की।

'काम-काज' आधुनिक ढंग की एक बहुत सुन्दर तथा कला पूर्ण रचना है।

कामकाज

(१)

बाजार भर में तलहका-सा मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्जन अपने एक नौजवान रिस्तेदार के सहारे अनारकली बाजार के बीचोबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाँह बंधी हुई थी, कपड़े मैले हो गये थे और मालूम होता था कि बहुत दिनों से वे हजामत नहीं बना पाये। इन सज्जन की आंखों में इतनी गहरी निराशा और असीम व्यथा का भाव स्पष्ट अंकित था कि देखने वाले सहम कर रह जाते थे। उनके पीछे-पीछे चालीस-पचास व्यक्ति चुपचाप चले जा रहे थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए या आहत व्यक्तियों का पहला बैच आज लाहौर पहुंचा था और उन सब में सम्भवतः यही एक ऐसे सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दूकान में खड़े होकर नये आने वाले कपड़ों के नमूनों की जांच-पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूर से आते हुए उस मातमी से मजमे पर पड़ी, मगर उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दो-एक मिनट में वह सज्जन लाला कस्तूरीमल की दूकान के सामने आ पहुंचे और उन्होंने अपने साथ के नौजवान से कहा—'बेटा, मुझे दो-एक कपड़े न खरीद दोगे?'

'मैं भी आप से यही प्रार्थना करने वाला था।'—कहकर वह नवयुवक उन्हें लाला कस्तूरीमल की दूकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दूकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दूकान पर सेल्समेन की कमी नहीं है मगर इन सज्जन की मैली-कुचैली हो रही आकृति में भी कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए पूछा—'कहिये, क्या हुक्म है?'

उन सज्जन ने धीरे से कहा—'कुछ धोतियां दिखाइयेगा?

उसी वक्त एक आदमी को धोतियां लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इलहाम सा हो गया कि यह सज्जन कहाँ से आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा—'आप क्वेटा से आ रहे हैं?'

'जी हाँ।'

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। वे पिछले तीन दिनों में कम-से-कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमें से एक का भी जवाब उन्हें

नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार-सहित क्वेटा में ही रहते थे और उनके सम्बन्ध में उन्हें अब तक कोई खबर नहीं मिली थी। धोतियों के एक नये आए हुए बण्डल का तागा कैंची से काटते हुए उन्होंने जरा व्यग्र भाव से पूछा--'पब्लिक वर्कस डिपार्टमेण्ट के मि० मधुसूदन को आप जानते हैं ?'

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा--'जी हाँ।'

'उनके घर वालों को भी ?'

'जी हाँ। खूब अच्छी तरह।'

लाला कस्तूरीमल ने नीली किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोलकर दिखाते हुए कहा--'यह नागपुर की धोती है. . .मि० मधुसूदन तो शायद उन दिनों दौरे पर थे ?

'जी नहीं। २९ मई की रात को उन्हें दौरे के लिये रवाना होना था, मगर वे गये नहीं। दौरा उन्होंने अगले दिन के लिये मुल्तवी कर दिया था।'

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा--यह धोती धुलने के बाद बहुत हल्की हो जाती है--ठीक गरमियों के लायक। यह भी नागपुर की है। अच्छा, तो वे दौरे पर नहीं गये ?

'जी, नहीं जा सके।'

'मेरा कोई तार उन्हें मिला था ?'

'मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन अब इस दुनिया में नहीं रहे।'

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती-भर भी विश्वास नहीं आया। धोतियों के ढ़ेर में से एक और जोड़ा निकालते हुए उन्होंने कहा—'आप किन मधुसूदन की बात कर रहे हैं?'

'उन्हीं मधुसूदन की, जिनकी पत्नी का नाम ऊर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिणी किनारे पर सरकारी हाई स्कूल के खेलने के मैदान के नजदीक थी।

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ-साफ दीख पड़ी। डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनके के आसरे को भी नहीं छोड़ना चाहता, उसी तरह लाला कस्तूरीमल ने अपने अविश्वास को जबरदस्ती जमाये रखने की चेष्टा करते हुए कहा—'भूकम्प के बाद आप उनके यहां गये थे?'

'नहीं जी।'

'फिर आपको कैसे मालूम हुआ कि वे नहीं बच पाये?'

'उनके छोटे भाई साहब की जबानी मालूम हुआ! आप बिना किनारे की भी कुछ धोतियां दिखाइयेगा?'

'मदरासी धोतियां। कर्नाटक मिल। पांच सात प्लेन डिजाइन फेंको!' लालाजी ने अपने आदमी को आवाज दी

और उसके बाद कहा—'उनके भाई साहब से ? क्या उन्होंने मि० मधुसूदन का अन्तिम संस्कार किया था ?'

'जी नहीं। उनको देह मिली ही नहीं। शायद कोठी की खुदाई करने पर कहीं कुछ पता चले।'

दक्षिण के छज्जे पर से पाँच-सात धोतियों का एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आकर गिरा। इस उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से गाहक के सामने जोड़ा खोलकर दिखाने लगे—'यह कर्नाटक का माल है। कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुंचाया है' लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गम्भीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा—'तो फिर क्या यह मुमकिन नहीं कि घर में किसी को इत्तला दिये बिना ही वे दौरे पर चले गये हों ?'

'नहीं जी। ऐसा नहीं हुआ। वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेल रहे थे।'

'ये धोतियाँ आप अवश्य पसन्द करेंगे। हाँ ऊर्मिला का क्या हाल है?'

'वे अस्पताल में हैं।'

'अस्पताल में !' लाला कस्तूरीमल की सम्पूर्ण देह एक बारगी काँप उठी और क्षण-भर के लिए उनके दोनों हाथ धोतियों के ढेर पर से उठ गये—'उसकी हालत कैसी है ?'

'चोट तो उन्हें उतनी अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चे के देहान्त का सदमा पहुंचा है। आपको अवश्य ही

स्वयं क्वेटा जाकर उन्हें लाने का प्रवन्ध करना चाहिए। इस जोड़े की कीमत क्या है ?'

'चार रुपया छः आना इसकी खरीद है। मैं आप से ज्यादा चार्ज नहीं करूँगा। कुछ और भी नमूने दिखाऊँ क्या ?'

'आपकी मेहरबानी। बनी-बनाई कमीज़ें भी तो आपके यहाँ होंगी !'

'आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न ?'

'जी नहीं ! मुझे स्वदेशी कपड़ा चाहिए।'

'हम खुद जहाँ तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते हैं। आपने खुद ऊर्मिला को अस्पताल में देखा था ?'

'ज़ी नहीं। यह भी मि० मधुसूदन के भाई साहब ने ही बताया था। मैं खुद चोट खा गया था, कहीं आ-जा नहीं सका।'

'आप रेशमी कमीज़ें चाहते हैं या सूती ? दोनों ही देख लीजिए। रामलाल, ३८ नम्बर की कमीज़ें लाना !' और उस एक ही साँस के उत्तर-भाग को अत्यधिक करुण और एकदम ठण्डा बनाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—'तो क्या काशी भी इस दुनिया में नहीं रहा ?'

'मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि यह दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूँ।'

इस समय तक काउन्टर पर कमीजों का ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल उस ढेर की कमीज़ें दिखाते हुए बोले 'यह मुर्शिदाबादी रेशम की कमीज है, यह ढाके के रेशम की और यह काशी के रेशम की। मजबूती के लिहाज से यह

काश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इत्सूका सूती कपड़ा सबको मात कर गया है। मिलने हाल ही में कीमतें भी बहुत गिरा दी हैं!' और तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास जबरदस्ती जगाकर लाला कस्तूरीमल नें कहा--'मि० मधुसूदन के भाई साहब तो चमन गये हुए थे?'

'दो एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुंचे थे। उस रात वे बरामदे में सोये थे, इसी से बच गये। इस कमीज की कीमत क्या है?'

तीन रुपया छः आना। आप से मैं तीन ही लूंगा।

'धन्यवाद! इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

इसी समय एक सम्भ्रान्त महिला उस दुकान में आई। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारी को उन सज्जन के पास छोड़कर स्वयं उस महिला की ओर बढ़ गये। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी, परन्तु उनकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया था!

(२)

रावलपिंडी जेल का सबसे अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ मजे-मजे में ग्यारह का घंटा बजा रहा था। सरदियों का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हल्की हल्की धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज आई--'तार ले लो।'

डयोढ़ी में कोई चौकीदार नहीं था। भीतर के सहन से यूसुफ नें तारवाले की आवज सुनी, मगर उसने कोई परवाह नहीं की। मजे-मजे में उसने मुगरी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे वह फाटक की ओर बढ़ा। तारवाला बहुत अधीर हो रहा था, परन्तु यूसुफ का डील-डौल देखकर उसे हिम्मत न हुई कि वह उस पर अपना रोब डालने का प्रयत्न करे।

नजदीक आकर यूसुफ ने पूछा—'किसका तार है ?'

'यूसुफ जमादार का।'

अट्टहास करके यूसुफ हँस पड़ा। जेल भर में और तो कोई यूसुफ है नहीं। बाकी रहा वह, सो उसका तार आ ही नहीं सकता। पिछले कई बरसों से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक नहीं आई, उसका तार कहाँ से आ सकता है ? फिर उसे देगा ही कौन ? सरहद के जिस अफरीदी प्रान्त में उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि में एक भी डाकखाना या तारघर नहीं। जी-भरकर हंस लेने के बाद यूसुफ ने कहा—कहीं गलती से कचहरी के यूसुफ का तार जेल के यूसुफ के पास तो नहीं ले आये ?'

मगर तार सचमुच उसी का था और शीघ्र उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौत के बाद कोई और व्यक्ति ठीक तौर से उन्हें दफना सकेगा, इस बारे में उन्हें शक था, इसी से, उन्होंने यूसुफ को बुलाने के लिये तार भिजवाया है।

इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ को पन्द्रह बरस

बीत चुके हैं, इन पन्द्रह बरसों में वह एक बार भी अपने देश को नहीं गया। कभी किसी बात के लिये एक दिन की भी छुट्टी उसने नहीं ली। युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में उस अशासित प्रान्त में अपने अनेक साथियों के साथ यूसुफ़ ने बीसों साहसिक काम किये हैं—डाके डाले हैं, चोरियां की हैं, और छोटी-मोटी लड़ाइयां भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ का विवाह हो गया, तो उसके श्वसुर-पक्ष का यह सब से बड़ा उलाहना बन गया कि यूसुफ़ निठल्ला है——न वह खेती बाड़ी करता है, न किसी गिरोह का सरदार है और न सरकार ही से वह कुछ पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ था और रावलपिण्डी पहुंचकर जेल में पहरेदार के पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह बरसों में प्रतिमास वह कम-से-कम दस रुपये अपने श्वसुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो वह खुद कभी उन से मिलने के लिये गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने श्वसुर का तार पाकर सहसा यूसुफ़ को अपनी मातृ-भूमि की स्मृति हो आई। वज़ीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ों पर चरती हुई भेड़ें और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वस्थ, हृष्टपुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ। उन्हीं सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होतें हैं। उसी भूमि की मटियाली सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और वहीं किशमिश, न्योजे और बादाम की बहार आती है। वहाँ आज़ादी है, वहाँ

बीरता है और सब से बढ़कर वहाँ पुरुषत्व है। हाँ, यूसुफ़ का बहिश्त वहीं तो है।

और इसके साथ-ही, साथ उसे अपने श्वसुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढ़ा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर भी उसने बुलाया है और कौन उसे ठीक तौर से दफ़ना सकेगा! यूसुफ़ को जाना ही चाहिये।

मातृ-भूमि की याद से एक विशेष तरह की स्निग्धता का भाव यूसुफ़ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुनगुनाता हुआ वह जेलर साहब के दफ्तर की ओर बढ़ गया। यूसुफ़ के आने से पहले ही उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुसकराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने कहा—क्यों यूसुफ़, पन्द्रह साल का रिकार्ड तोड़कर छुट्टी लेना चाहते हो?

यूसुफ़ ने कोई जवाब न दिया।

जेलर साहब ने पूछा—'तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है?'

'छियत्तर साल।'

'अब भी तुम चाहते हो कि वहां पहुंचकर उसे बचाने की कोशिश करो?'

यूसुफ़ चुप रहा।

जेलर ने अबके बहुत ही गम्भीर बनकर कहा—'कानून

के मुताबिक यहाँ छे जमादारों का हर वक्त मौजूद रहना लाज़मी है। आठ जमादारों में से दो पहले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत में मैं तुम्हें छुट्टी किस तरह दे सकता हूं?'

यूसुफ़ ने कहा—'अलादीन की छुट्टी कल से मंजूर हो चुकी है, मगर वह गया नहीं। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक़ में बाद के लिए मन्सूख करवा लेगा। उसे कोई ख़ास काम तो है नहीं।'

जेलर साहब ने कुछ चिढ़कर कहा—'तुम्हें कौन-सा ख़ास काम है? ससुर का दफ़नाना! यह भी कोई काम है!'

कठोर हृदय यूसुफ़ ने सिर झुका दिया—जैसे वह पराजित हो गया हो, मगर जेल के क्लार्क ने उसकी मदद की। वह बोला—'शायद कोई जायदाद-यावदाद का सवाल हो।'

यूसुफ़ खिज उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—'मैं किसी जायदाद के लालच से नहीं, अपने ससुर की खिदमत के ख़याल से वहाँ जाना चाहता हूं।

जेलर ने ज़रा ऊंची आवाज़ में कहा—'ससुर का भी कोई नाता होता है! एक आदमी की लड़की ले ली, इससे वह उम्र भर के लिए रिश्तेदार हो गया! यह भी कोई रिश्ता है?'

जेल का क्लार्क मुंह मोड़कर अपनी हंसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लेक्चर अभी तक जारी था—'देखो यूसुफ़! हिन्दुस्तान भर में तुम्हारा ही यह रिकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन

की छुट्टी कभी नहीं ली। एक ज़रा-सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रिकार्ड तोड़ डालना चाहते हो।'

दानवकाय यूसुफ़ से जब और कुछ न बन पड़ा, तो उस की आंखों में आँसू भर आये।

क्लार्क को अब उस पर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा—'तो तुम ज़रूर छुट्टी लेना चाहते हो?'

यूसुफ़ ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

क्लार्क ने जेलर से कहा—'वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाकी है। कानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिये मज़बूर नहीं कर सकते।'

जेलर ने एक बार अपने क्लर्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा, परन्तु सहसा उन्हें उसी समय एक भली बात का स्मरण हो आया। क़रीब दो महीने बाद पेशावर के जेल-इंसपेक्टर महोदय रावलपिण्डी में नियुक्त होकर आने वाले थे। जेलर ने उन्हें भेट में भेजने के लिए सेबों की एक पेटी का आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ़ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाय।

जेलर साहब ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा—'तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गांव जाओगे न?'

'जी हाँ।'

'तो तुम्हें दस दिनों की छुट्टी मैं दे सकता हूं। मगर आज से नहीं। दो दिन बाद से।

यूसुफ ने नम्रता से कहा––उनका तो मालूम नहीं, वे कब चल बसें। आज रात को रवाना होकर भी जल्दी-से-जल्दी मैं तीन दिन बाद ही वहाँ पहुँच सकता हूं।

जेलर ने कहा––'तुम्हारी छुट्टी मंजूर होने में दो दिन अवश्य लग जायेंगे।'

यूसुफ और क्लार्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर साहब की ओर देखा। उन दोनों के लिये यह बात अश्रुतपूर्व थी। क्लार्क ने कहा––'दरखास्त पर आप ही के दस्तखत काफी नहीं हैं क्या ?'

अपनी कमीनगी पर मुसकराहट का परदा डालते हुए जेलर ने कहा––'यार' तुम्हें मेरी सेबों की एक पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी और पेटी परसों से पहले यहाँ नहीं पहुंच सकती।'

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्त्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ आज ही रवाना हो जाने के लिये और अधिक आग्रह नहीं कर सका ?

(३)

साइकल के पैडलों पर तेज़ी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं और आज शनिवार है। एक बजे

के बाद बैंक से लेन-देन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पाँच सौ रुपये के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर उसे अपने मालिक की एक रेलवे रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग से होकर जहाँ मालरोड की ओर घूमती है, वहाँ देसराज के मार्ग में सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पचीस आदमी जमा थे। देसराज की साइकल जब वहाँ पहुंची, तो दो-तीन आदमियों ने हाथ बढ़ा कर उससे कहा—'बाबूजी, जरा ठहरिये।'

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते एक आदमी को गश आ गया है। उसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम; मगर बेहोशी दशा में भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण स्वर में वह बार-बार पुकार उठता है—'पानी ! पानी'

मगर आसपास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेले वाले ने देसराज से कहा—'बाबूजी, वह यहाँ से थोड़ी ही दूरी-पर युनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। आप यदि साइकल पर वहाँ जाकर एक लोटा पानी ला दें सकें, तो इस बेचारे की जान बच जाय।'

देसराज ने पूछा—'यहाँ यह कब से पड़ा है ?'

किसी ने बताया—करीब पन्द्रह मिनट से।'

देसराज ने दूसरा सवाल किया—'इसे क्या बीमारी है ?'

एक मुसाफिर ने झुंझला कर कहा—'हम लोगों में से कोई डाक्टर तो है नहीं। जो कुछ है, वह आपके सामने है।'

देसराज शायद इस बात पर खिज उठता; परन्तु उसी समय उसी ठेले वाले ने बड़ी नम्रता से कहा--'बाबू साहब' यहाँ इस आदमी का अपना कोई भी नहीं। यदि दो चार मिनटों में आप साइकल पर जाकर कहीं से इसे पानी ला दे सकते, तो उसके बाद में अपने ठेले पर लिटाकर इसे अस्पताल तक छोड़ आता। आप साहब हैं आपको माँगने पर पानी मिल भी जायगा, मगर हम गरीबों को इन बड़ी-बड़ी इमारतों में कोई घुसने भी न देगा।'

देसराज के जी में सचमुच दया का संचार हो आया। वह खुद भी एक गरीब बाबू है--ऐसा ग़रीब बाबू, जिसे अपने जीवन-निर्वाह में इन ठेले वाले और झल्लीवाले मजदूरों से भी बढ़कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उससे दिन में बारह घटे और चार सप्ताहों में सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दूकान महीने में एक ही दिन बन्द होती है) कसकर काम लेता है, तब जाकर उसे तीस रुपया मासिक मिलता है। वह भी गरीबों के दुःख-दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नहीं समझेगा, तो और कौन समझेगा? वह देख ही रहा था कि कालेज के विद्यार्थियों की साइकलें और अमीरों की कारें काफी संख्या में उसी सड़क पर से होकर इधर-उधर निकल जाती हैं, किसी को इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ी पर पड़ी। बारह बज कर पैंतालीस मिनट हो चुके हैं। पन्द्रह मिनटों के बाद बैंक में न तो रुपये

ही जमा कराये जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलने में दो दिन की देर हो जायगी और वह स्वतन्त्र नहीं है!

हृदय की सम्पूर्ण भावुकता को कुचलकर देसराज साइकल पर सवार हो गया और कुछ गज आगे बढ़कर वह कहता गया—'बीस-पचीस मिनट में मैं वापस आता हूं।'

बैंक से अपना काम समाप्त करके देसराज जब गोलाबाग़ के नजदीक पहुंचा, तो उसने देखा कि वहाँ तमाशबीनों की भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई है कि सड़क पर राह मिलना भी कठिन है।

देसराज साइकल से उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा—'क्या बात है?'

उसनें बताया—'कुछ नहीं, कोई मुसाफिर राह चलते सड़क पर गिरकर मर गया है और पुलिस उसकी लाश लेने आई है।

देसराज ने एक ठण्डी सांस ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार करके वह पुनः साइकल पर सवार हो गया। पांच सौ रुपयों के पोमेड वैसलीन के पार्सल की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रेलवे रसीद अब उसकी जेब में पड़ी थी!

ठाकुर श्रीनाथसिंह

ठाकुर श्रीनाथसिंह से कौन हिन्दी भाषा-भाषी परिचित नहीं। अपनी निर्भीकता, निडरता और खुली बात कह देने के लिये प्रायः आपको कटु आलोचना का सामना करना पड़ता है पर ठीक चाहे गलत आप अपनी बात पर अड़े रहते हैं।

आयु आपकी लगभग पैंतालीस वर्ष की है। आप पुराने साहित्य-सेवी हैं। १९२५ में आपने पहले पहल लिखना आरम्भ किया, कई दैनिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन विभाग में काम कर चुके हैं। आजकल आप इलाहाबाद से 'दीदी' नाम की स्त्रियोपयोगी पत्रिका निकाल रहे हैं।

कुशल सम्पादक होने के साथ ही साथ आप एक कुशल कहानी तथा उपन्यासकार हैं। भाषा आपकी सरल सीधी और शैली मार्मिक है। आपके तीन उपन्यास 'उलझन' 'जागरण' और 'क्षमा' प्रकाशित हो चुके हैं। अभी हाल ही में 'नयन तारा' नाम से आपकी कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है।

'बालक का सुधार' आप ी एक अत्यन्त सुन्दर रचना है। मारपीट के बदले यदि बच्चों को प्यार से समझाया जाए तो उसका प्रभाव कितना जल्दी होता है, यही इस कहानी में कुशलता-पूर्वक चित्रण किया गया है।

बालक का सुधार

रामगुलाम अपने खाट पर लेटे-लेटे अखबार पढ़ रहे थे। नीचे जमीन पर उनका प्यारा बेटा नरेन्द्र स्लेट पर इस तरह ध्यान लगाये बैठा था, जैसे बगुला मछली की ताक में तालाब पर ध्यान लगाकर बैठता है। शायद नरेन्द्र एक प्रश्न का उत्तर निकाल रहा था। बगुला तो मछली को खाता है, परन्तु नरेन्द्र इस उत्तर को कैसे खायेगा ? वह लड्डू तो है नहीं। तब उस उत्तर के पीछे वह परेशान क्यों हो ? बड़ा होने पर वह उत्तर उसे काम देगा, यह तर्क अभी उसके दिमाग में नहीं उत्पन्न हुआ था। उसने सिर्फ खेलना सीखा था। खेलने में उसे बड़ा मजा आता था, पर खेलने की, विशेषकर सड़क के लड़कों के साथ खेलने की, उसे सख्त मनाही थी। अब वह करता तो क्या करता ? ऊपर पिता की भयानक आँखें थीं

और आगे वह छोटी सी स्लेट, जो उसे अथाह गहरे, काले समुद्र की भांति दिखाई पड़ रही थी, जिसमें डूब मरने का उसे साहस न होता था। बेचारा लड़का सब प्रकार से सताए हुए कैदी की भांति सिर झुकाये बैठा था।

उसने घर के बड़े-बूढ़ों से सुना था कि यह संसार एक बड़ा भारी जेलखाना है, ईश्वर पापियों को यहाँ भेजता है। जब उनके सब पाप कट जाते हैं तब वे यहां से छोड़े जाते हैं अर्थात् मुक्ति पाते हैं। जिन लोगों ने नरेन्द्र के कानों तक संसार के सम्बन्ध में यह तर्क पहुंचाया था उन्होंने चाहे संसार को इस रूप में न देखा हो, पर नरेन्द्र उसे बिलकुल इसी रूप में स्पष्ट देख रहा था। देखने की कौन कहे, अनुभव कर रहा था। कभी-कभी वह सोचता था कि घर से भाग जाये और सड़क के लड़कों में जा मिले और कभी घर लौट कर न आवे। पर उसे साहस न होता था। जब उसे यह ध्यान आता था कि बाबू जी पकड़ पायेंगे तो मार ही डालेंगे, तब वह और भी सिकुड़ कर सहम-सा जाता था।

अपने जी में कुछ इसी प्रकार की बातें सोचता हुआ आज नरेन्द्र अपने पिता की चारपाई के पास खूंटे के समान गड़ा बैठा था, परन्तु उसका चंचल चित्त खिड़कियों के बाहर बार-बार जाने लगा। पर वह ज्यादा दूर तक न जा सकता था, क्यों कि वह पास ही लेटे हुए पिता से बेहद डर रहा था?

एकाएक रामगुलाम ने पूछा—निकला?

नरेन्द्र चौंक पड़ा। वह ऐसा दुबक कर बैठ गया जैसे किसी पर हमला करने को है।

रामगुलाम ने उसके मुंह पर एक थप्पड़ जमाकर कहा–अबे बिल्ली सा क्यों दुबका जाता है। वह चूहा थोड़े ही है जो तू उसे उछलकर पकड़ लेगा। कुछ बुद्धि क्यों नहीं लड़ाता?

नरेन्द्र चुप रहा। जैसे कछुआ अपने हाथ-पांव और सिर को आपत्ति के समय समेट लेता है, वैसे ही वह भी सिमट कर बैठ गया।

रामगुलाम ने गरज कर पूछा—देखूं क्या किया है।

नरेन्द्र फिर भी उसी प्रकार सिमटा बैठा रहा। जैसे कीड़े मकोड़े सिकुड़कर और निर्जीव से होकर अपनी रक्षा करते हैं, वैसे ही नरेन्द्र भी कर रहा था। उसके मां-बाप के घर में उसका जीवन सचमुच कीड़ों का सा ही था।

रामगुलाम ने उसके हाथ से स्लेट छीन ली। देखा तो उसमें प्रश्न के अतिरिक्त एक अंक भी नहीं लिखा गया था। उन्होंने क्रोधावेश में आकर स्लेट दूर फेंक दी।

नरेन्द्र की मां घर के दूसरे भाग में रसोई बना रही थी स्लेट के गिरने की आवाज सुनकर वह वहां दौड़ी आई। देखा पति देवता स्लेट को चकनाचूर कर पुत्र पर दांत पीस रहे हैं।

घर में ऐसे दृश्यों का देखना उसके लिए कोई नई बात न थी। पर आज जैसे उसका जी इन बातों से भर गया हो। उसकी सहनशीलता की सीमा टूट गई और आज प्रथम बार उसने उच्च स्वर से अपने पति से कहा–अगर

तुम्हें सुधार ही करना है तो संसार में बड़े-बड़े पापी पड़े हैं, उनको जाकर पीटो। चोर, जुआरी, डाकू, खूनी तुम्हें चारों तरफ मिलेंगे, जिसका चाहो, सुधार करो। मेरे नादान बच्चे को किसी तरह जीने दो।

'बस तुम्हीं ने इसे बिगाड़ रक्खा है।'

'संसार में सब से बड़ा अपराधी यही है?'

'संसार गया चूल्हे में।'

'संसार चूल्हे में न जायगा, परन्तु तुम मेरे बेटे को जरूर चूल्हे में झोंक दोगे।'

यह कहती हुई मां ने बच्चे को प्यार से उठा लिया अब बच्चे को मालूम हुआ कि वह कीड़ा मकोड़ा नहीं, मनुष्य का बच्चा है। भय और क्रोध से उसका जो हृदय पत्थर के समान सख्त होकर जल रहा था, वह मां के शीतल मीठे शब्द सुनते ही पिघल उठा। उसकी आँखों की बूँदे छलछला आईं। वह जोर जोर से रोने लगा।

बिना और कुछ कहे हुए मां उसे उठाकर अपने कमरे में ले गईं। रामगुलाम अखाड़े के पराजित पहलवान की भांति सड़क की ओर देखने लगे।

(२)

जब माता के समस्त स्नेहमय उपचार व्यर्थ गए और नरेन्द्र के आंसू न रुके तब उसने बेटे की पीठ पर हाथ फेरते हुए उससे पूछा—सड़क पर जाओगे? जाओ खेल आओ।

यह बहुत बड़ी रिश्वत थी जो नरेन्द्र को चुप हो जाने के लिए दी जा रही थी। इसकी उपेक्षा वह न कर सका। उस के आँसू तो रुक गये, पर इस रिश्वत को स्वीकार करते हुए वह कुछ घबरा सा रहा था। उसे चुप देखकर मां ने फिर पूछा—–क्यों खेलने जाओगे ?

नरेन्द्र चुप रहा।

मां ने पूछा—–'क्या सोच रहे हो ?'

नरेन्द्र ने भरे हुए गले से कहा–'बाबा जी मारेंगे तो नहीं ?'

'नहीं, चलो ! मैं तुम्हें दरवाजे तक पहुंचा आऊंगी।'

मां चल पड़ी। उसकी साड़ी पकड़कर नरेन्द्र उसके पैरों से चिपटा हुआ इस प्रकार चलने का प्रयत्न कर रहा था, जिससे रामगुलाम को उसकी आहट न मिले। इधर-उधर से वह रामगुलाम की ओर देख भी लेता था और फिर एकाएक चुपके से आंख बन्द कर मां से लिपटा हुआ चलने लगता था।

जब मां-बेटा उस स्थान पर पहुंचे जहां रामगुलाम बैठे हुए थे तब नरेन्द्र भावी संकट की आशंका से कांप सा उठा। उस समय उसकी अवस्था उस अपराधी की सी थी जो जज के सामने अपना अन्तिम फैसला सुनने के लिये उपस्थित होता है। उसने एक विचित्र प्रकार दीन वेष बना लिया। रामगुलाम को उस पर दया आ गई। उनके जी में आया कि उसका हाथ पकड़कर अपने निकट खींच लें और खूब प्यार करें। पर न जाने क्या सोचकर वे जहां के तहां बैठे रह गये।

जब मां-बेटा बाहर के द्वार पर पहुंचे तब मां वहां इस तरह खड़ी हो गई कि उस मार्ग से कोई दूसरा व्यक्ति न निकल सके। नरेन्द्र को उसने अपने आगे कर दिया और कहा—खेल आओ। पर खाने के समय लौट आना। जल्दी आना, अच्छा। धीरे से 'बहुत अच्छा' कहकर नरेन्द्र आगे बढ़ा।

'रामगुलाम ने चिल्ला कर कहा—कहां? कहां चले जनाब?'

उन्हीं के स्वर में स्वर मिला कर नरेन्द्र की माँ ने कहा-खबरदार जो बच्चे को रोका।

फिर उसने नरेन्द्र से कहा—जाओ।

नरेन्द्र मुक्त पक्षी के समान फुर हो उड़ गया। अब वह रामगुलाम की पहुंच से बाहर था।

नरेन्द्र को इस प्रकार बाहर कर उसकी माँ रसोई घर को लौट आई। रामगुलाम स्त्री को रोक कर इस सम्बन्ध में उससे कुछ बहस करना चाहते थे पर उसका रुख न पाकर वे चुप रहे और इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि जब वह उन्हें भोजन करने के लिये बुलाने आवेगी तब उससे बहस करेंगे।

ठीक समय पर जब स्त्री ने आकर उन से भोजन करने के लिये कहा तब वे बोले—'नरेन्द्र लौट कर आया?'

'आ ही जायगा। खाना ठण्डा हो रहा है। उठो'

'तुम लड़के को बिगाड़ डालोगी। वह प्यार किस काम का जो लड़के को अवारा बना दे।'

'घर में रहने से तो वह रोकर मर जायगा।'

और अवारा लड़कों में उसका जाना क्या उसके हक़ में अच्छा है ? उन लड़कों के साथ में पड़कर वह चोर, डाकू और हत्यारा बनेगा। अपना जीवन नष्ट करेगा और हमारे तुम्हारे मुँह पर कालिख पोतेगा।

'कैसी बातें करते हो ? जितने लड़के हैं अपने घरों से बाहर सड़क पर खेलते हैं. सभी आवारा नहीं हैं। सब मनुष्यों के ही लड़के हैं। सभी माँ-बाप खुद चाहे जैसे हों, अपने बेटों को भला बनाना चाहते हैं।'

'जो अपने लड़के को अच्छा बनाना चाहते हैं, वे उन्हें सड़क के कुत्तों में बुरी आदतें सीखने नहीं भेजते।'

'क्या कहते हो ? रात-दिन हमारे और तुम्हारे साथ रहने से लड़का जो अच्छी आदतें सीखेगा वे उसके सड़क पर जाने से क्या नष्ट हो जायँगी ?'

'हाँ-हाँ।'

'मैं ऐसा नहीं समझती। मनुष्य अच्छी बातें जल्दी सीखता है बुरी बातें देर में।'

'बिलकुल गलत, बिलकुल गलत। मनुष्य बुराई पहले सीखता है--सबसे पहले उसे बुराइयाँ अधिक प्यारी मालूम होती हैं।'

'तब तो कोई ईलाज नहीं है ?'

इलाज है। उसे घर से बाहर मत निकलने दो।'

खैर देखा जायगा। चलो भोजन करो।'

बड़ी मुश्किल से बहुत अनुनय-विनय के बाद रामगुलाम ने भोजन किया।

नरेन्द्र जब घर लौटकर आया तब पिता को न पाकर बहुत खुश हुआ। सीधा माँ के पास आकर बोला—माँ मैं रोज खेलने जाऊँगा।

माँ ने कहा—नहीं बेटा! अपने घर में खेलो। बाहर जाने से तुम्हारे बाबू जी नाराज होते हैं।

'क्यों अम्माँ?'

'वह तुमको अच्छी-अच्छी बातें सिखाना चाहते हैं, अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ाना चाहते हैं।'

'वह कुछ नहीं सिखाते, माँ, सिर्फ मारते हैं। मैं उन से कुछ नहीं सीखूंगा। मुझे तुम सिखाओ।'

माँ-बेटे में इसी प्रकार देर तक बातें हुईं।

उस दिन से रामगुलाम ने नरेन्द्रको पढ़ाना बन्द कर दिया और उसकी ओर से उदासीन रहने लगे पर उनका यह भाव बहुत दिनों तक न रहा। शीघ्र ही वह एक नई स्लेट ले आये और नरेन्द्र को फिर अपने पास बुलाने लगे।

एक दिन नरेन्द्र को समझाते हुए उन्होंने कहा-बेटा, अपने घर में ही खेला करो। सड़क के लड़के बड़े अवारा होते हैं। वे तुमको चोर या डाकू बना देंगे और तुम पकड़े जाओगे।

'हाँ' बाबू जी! यह बात तो है। परन्तु बारी-बारी से सब चोर बनते हैं। बड़ा मजा आता है। आज तो मन्ना चोर बना था।

'वह काछी का लड़का ?'

'हाँ ।'

'वह साला जन्म का चोर है ।'

बाबू जी उसे गाली न दो । वह बड़ा अच्छा लड़का है। कल उसने मुझको अपनी पीठ पर चढ़ाया था। गोविन्द भी बहुत अच्छा है । उसने मुझे अपनी बंशी बजाने को दी थी। गुप्त और भी अच्छा है । वह अपना गधा ले आता है और सबको चढ़ाता है ।

रामगुलाम के मुंह में मशीनगन सी लग गई । लगे चिल्लाने–चुप, चुप ! खामोश ! सूअर ! मुझे उपदेश देने चला है। बाप बना जा रहा है। नालायक ! भाग, हट यहाँ से, ठहर ! ठहर ! जरा तेरे कान गरम कर दूँ। बोल ! अब तो सड़क पर अकेले नहीं जायगा। बोल ! बोल !

हल्ला सुनकर नरेन्द्र की माँ फौरन ही आ पहुंची नरेन्द्र दौड़कर उसके पैरों से लिपट गया और लगा सिसक, सिसक कर रोने ।

'अरे ! सड़क के लड़कों को बुरा बताते हो ! और तुम लड़के को क्या सिखलाते हो ?

'बस ! ले जाओ। इसको यहाँ से भाड़ में झोंक दो। जो तुम्हारे जी आवें करो, इस संसार में तुम्हारे ही तो एक लड़का पैदा हुआ है।'

माँ-बेटा दोनों आँखों में जल भरे वहाँ से चले गये।

(३)

नरेन्द्र की मां के सामने खासा धर्म संकट उपस्थित था। वह पति और पुत्र दोनों को प्रसन्न रखना चाहती थी। पति की उदासी और पुत्र के आँसू उससे देखे नहीं जाते थे।

एक दिन रामगुलाम शान्तभाव से बैठे थे। उसने कहा–बेटे को स्कूल में भर्ती करा दो। वहाँ लड़कों से उसका जी भी बहलेगा और तुम्हारे सामने कोई उलझन भी न रहेगी।

'स्कूल के लड़के और भी अवारा होते हैं। मां-बाप विद्या सीखने के लिये उन्हें स्कूल भेजते हैं और वहाँ जाकर वे बदमाशी सीखते हैं।'

'तब तुम लड़के को क्या कैद कर रखना चाहते हो?'

'मैं उसे आदमी, इन्सान, मनुष्य, आदर्श मनुष्य बनाना चाहता हूं। जब तक वह अपना हानि, लाभ समझने लायक न हो जाय मैं उसे किसी लड़के से नहीं मिलने जुलने दूंगा।'

खूब! तुम्हारा जरा सा घर, छोटा सा आंगन है। इसमें लड़का कहाँ खेले? किसके साथ खेले।

'खेलकर क्या करेगा? यह तो सीखने की उम्र है।'

'तुम को बहुत बड़ा आदमी होना था। तुम्हारे घर से मिला हुआ बाग होता, उसमें लड़का खेलता! पचासों नौकर होते जो उसे खेलाते! दस बीस मास्टर लगे होते जो उसे पढ़ाने आते। क्यों?'

'यह और भी बुरा होता। अमीरों के लड़कों को नौकर और मास्टर मिलकर बिगाड़ देते हैं।

'संसार में एक तुम्हीं बनाने वाले हो, बाकी सब बिगाड़ने वाले हैं क्यों ?'

'तुम नहीं समझ सकतीं ! अगर ईश्वर स्त्रियों को भी उतना ही दिमाग देते जितना पुरुषों को देते हैं तो स्त्री-पुरुष में इतना अन्तर ही क्यों देखने में आता ?'

बीमारी ला-इलाज देखकर स्त्री चुप हो रही।

अब नरेन्द्र की प्रसन्नता के लिये वह क्या करे ? अन्त में उसे एक तरकीब सूझी। जिन लड़कों के साथ नरेन्द्र खेलने जाता था उन सब से उसने घनिष्ठता स्थापित करने का निश्चय किया। उसने सोचा कि इससे उसे इस वायु-मंडल को समझाने और सुधारने में सहायता मिलेगी जिसमें उसका बेटा पलकर बड़ा होना चाहता है।

माता का इशारा पाते ही नरेन्द्र अपने साथियों को घर लाने लगा। उसमें ऊंची जाति के भी कुछ लड़के थे पर अधिकतर निम्न श्रेणी के—चमार, धोबी और काछी आदि के ही लड़के थे। नरेन्द्र को इस बात की हिदायत थी कि वह अपने साथियों को सिर्फ दोपहर के समय लावे। नरेन्द्र इस पर पूरा अमल करता था, क्योंकि और समय में उसके पिता घर पर ही रहते हैं।

धीरे-धीरे नरेन्द्र की मां उन सभी बालकों को प्यार करने लगी। सबों के उसने प्यार के नाम भी रख लिये वे सब वैसे ही थे, जैसे उसका बेटा था। जैसे नन्हा पौधा बढ़कर विशाल वृक्ष बनता है वैसे ही वे सब लड़के भी बढ़कर पूर्ण मनुष्य

होने का प्रयत्न कर रहे थे। अवसर दिया जाय तो सभी मनुष्य पूर्ण बन सकते हैं अवसर न दिया जाय तो जैसे छाया का पौधा वृक्ष नहीं बन सकता, वैसे ही बालक भी मानवीय पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। इस बात को नरेन्द्र की माँ ने समझ लिया था। उसका यह विश्वास था कि नदी का बहाव जैसे समुद्र की ओर होता है, वैसे ही मनुष्य-जीवन का उच्च आदर्शों की ओर। यह बात न होती तो संसार रहने के लायक न होता, समाज के नियमों की कोई परवाह न करता।

नरेन्द्र की और उसके इन साथियों की धीरे-धीरे वह स्वयं सहेली बन गई। उनकी रग-रग से वह परिचित हो गई उसको यहाँ पता चल गया कि अच्छी या बुरी पोशाक और अच्छे या बुरे भोजन से प्रभावित शरीर के अतिरिक्त मनुष्य के बच्चों में और कोई भेद नहीं होता। गन्दी बातें करना और गालियाँ बकना लड़के मां-बाप से सीखते हैं, इसलिये इसमें उनका कोई कसूर नहीं।

रामगुलाम को जब शाम-सबेरे नरेन्द्र स्थिर दिखाई पड़ने लगा तब उन्होंने समझा कि उनकी डाँट-डपट काम कर गई है। उन्हें क्या पता था कि सड़क के आवारा लड़के उनके घर पर ही घंटों बैठते हैं। वे अपने दफ्तर में अपने साथियों से अक्सर कहते––मैं अपने लड़के को घर से बाहर नहीं निकलने देता। बाजारू लड़कों से उसे नहीं मिलने देता। वह बड़ा आदर्श भोला भाला लड़का है। संसार की किसी बुराई का उसे पता नहीं।

इस पर उनके साथियों में से एक कहता—मैं बिलकुल इसका उलटा करता हूं। मेरा लड़का जहां चाहे जा सकता है। शहर की एक-एक गली का उसे पता है। संसार की सब बुराइयां उसे मालूम हैं। वह मुझे सब बताता है। कोई बात नहीं छिपाता। हर बात में मैं उसे सलाह देता हूं। और मैंने उसे आजादी दे दी है कि मेरी सलाह वह ठीक न समझे तो न माने।

इस पर रामगुलाम कहते—आप अपने लड़के को शैतान बना रहे हैं। तब उन्हें उत्तर मिलता—आप अपने लड़के को पाषाण बना रहे हैं। फिर दोनों में वाक्-युद्ध होता और बड़ा मजा आता।

अब एक दिन का हाल सुनिये। एक दिन दफ्तर में अचानक आधे दिन की छुट्टी हो जाने से रामगुलाम अपने इसी मित्र के साथ घर आ रहे थे। एकाएक उन्हें लड़कों का एक जलुस आता दिखाई पड़ा। बीच में एक गधा था जिस पर उन्हीं का लड़का सवार था और उसके सिर पर कागज की लम्बी टोपी डटी थी। लड़के चिल्ला रहे थे—अलाउद्दीन खिलजी दक्खिन फतह करने जा रहे हैं। भागो, बचो, रास्ता दो। हो! हो! वाह! वाह!

रामगुलाम ने करीब आ कर नरेन्द्र को पहचाना। उनके गुस्से का ठिकाना न रहा। उन्होंने उसके सिर से कागज की टोपी उतार ली और उसे टुकड़े २ कर डाला और कहा—शैतान के बच्चे! गधे!

नरेन्द्र के काटो तो खून नहीं। वह कीड़े की भांति गुड़ी मुड़ी हो कर गधे से नीचे आ गिरा, यह किसी ने न जाना। बादशाह अलाउद्दीन पर रास्ते में इस तरह हमला हो जायगा, इसके लिये लड़के तैयार न थे। पर आखिर उस समय वे बने तो थे सिपाही ही और फिर दक्खिन फतह करने जा रहे थे। वे सब के सब अड़कर खड़े हो गये और रामगुलाम से बोले खबरदार जो आगे बढ़े! रामगुलाम भी कुछ चौंके। तब तक चार पाँच लड़के उनकी टांगों से लिपट गये, दो बड़े लड़कों ने उन की कमर पकड़ ली। गुत्थम-गुत्था होने लगी। जितनी भी वे अपने आपको लड़कों से छुड़ाने का यत्न करते, उतना ही लड़के उनसे चिपटते जाते। राम-गुलाम ने अपने साथी से कहा—पुलिस में खबर करो। ये बदमाश लड़के हैं। इस तरह न मानेंगे।

लड़कों ने चिल्लाकर कहा——हम पुलिश से नहीं डरते, हम तुम से नहीं डरते। हम खिलजी बादशाह के सिपाही हैं।

रामगुलाम के साथी ने लड़कों को सम्बोधित करके कहा-बेशक तुम बड़े बहादुर लड़के हो। अब इनको छोड़ दो। अपनी सवारी आगे ले जाओ।

'नहीं इनको हम नहीं छोड़ेंगे।

'क्या करोगे?'

'अम्माँ के पास ले जायेंगे।'

'अच्छा तो इस तरह न चिपटो, इन्हें छोड़ दो ये तुम्हारी अम्मां के पास चलेंगे।'

यह कहते हुए रामगुलाम के साथी ने उनसे कहा—कोई हर्ज नहीं। चल कर देखो कि यह तुम्हें कहां ले चलते हैं।

'मैं आप से कहता हूं कि पुलिस बुलाइए।'

'हम पुलिस हैं' लड़के चिल्लाने लगे। और कोई उपाय न देखकर रामगुलाम को लड़कों के साथ आगे बढ़ना पड़ा। उनका साथी भी पीछे पीछे चला। ये सब लड़के रामगुलाम को उन्हीं के घर पर ले गये। नरेन्द्र मौका पाकर चुपके से पहले ही भाग आया था। वह घबराया हुआ अपनी मां को पकड़े खड़ा था। नरेन्द्र की मां को देखकर लड़कों ने चिल्ला कर कहा—अम्मां यह आदमी नरेन्द्र को मार रहा था।

'इन्हें छोड़ दो नरेन्द्र के पिता हैं।'

लड़के अपराधी की भांति एक तरफ खड़े हो गये। रामगुलाम के साथी ने चुमकार कर कहा—डरो नहीं, तुम सब बहादुर लड़के हो। तुम सब खिलजी बादशाह हो। आहा! हा! हा!

लड़के हंसने लगे और एक-एक करके वहीं बैठ गये।

'हम क्या जानते थे कि वह नरेन्द्र के बाबू जी हैं? वे आपस में बातें करने लगे।

रामगुलाम की स्त्री ने कहा—कोई हर्ज नहीं पर अब ऐसा कभी न करना। जाओ खेलो।

सब लड़के भागे। नरेन्द्र बोला—माँ, मैं भी...?

मां ने पति की ओर देखा। रामगुलाम ने कहा—जाओ

तुम पुत्र नहीं हो, दुश्मन हो, किसी पूर्व-जन्म का बदला लेने के लिए मेरे घर में पैदा हुए हो।

नरेन्द्र भी लड़कों से जा मिला। सब लड़के इस तरह खेलने लगे, मानों कुछ हुआ ही नहीं।

रामगुलाम के साथी ने कहा--खैर आप एक लड़के को हमेशा कैद करके रखते थे आज सब लड़कों ने मिलकर आप को कैद कर लिया। अच्छा बदला लिया।

पर रामगुलाम ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने घर से बाहर निकल कर सड़क की ओर देखा--नरेन्द्र को लड़के फिर गधे पर चढ़ाये लिए जा रहे थे। वह खूब खुश हो रहा था। वहाँ थी केवल प्रसन्नता, एक मात्र प्रसन्नता? वे घर में लौट आये और खूंटी पर कोट टाँगते हुए अपने साथी से बोले--बाप बनने में बड़ी मुसीबतें हैं।

पर साथी दूसरी ओर मुंह करके मुस्करा रहा था और स्त्री अपनी हंसी रोककर इशारे से नाश्ता लाने के सम्बन्ध में कुछ पूछने का प्रयत्न कर रही थी।

श्रीकृष्णानन्द गुप्त

कुछ देर की बात है गुप्त जी बड़े जोरों से हिन्दी में कहानियां लिख रहे थे। कविवर मैथिलीशरण जी के साथ चिरगांव (झांसी) में रहते थे। तभी आपकी कहानियों के दो संग्रह निकले। 'केन' नाम का एक उपन्यास निकला और स्व० प्रसाद जी के नाटकों पर एक आलोचना की पुस्तक भी निकली पर फिर अचानक आपने कुछ न लिखने का निश्चय कर लिया और अपने मन को होजरी के कारोबार में लगा दिया। यह प्रसन्नता की बात है कि आप अपनी सुन्दर कहानियों के साथ पूरे पांच वर्ष की खामोशी के बाद फिर हिन्दी-क्षेत्र में उतरे हैं। पिछले वर्षों आप ओरछा टीकमगढ़ से 'लोकवार्त्ता' नाम की नृतत्व (Anhtropology) पत्रिका का बड़ी सफलता के साथ सम्पादन करते रहे। आज कल अपने निवासस्थान मऊ झांसी में ही हैं।

उतार चढ़ाव अपने अपने जीवन में बहुत देखे हैं और यही कारण है कि आप की कहानियों में एक मीठा दर्द है, जो धीरे धीरे पाठक के मनप्राण पर अधिकार कर लेता है।

अपराधी

बदल की पत्नी को आज सातवां लंघन था। वैद्य ने कल पथ्य देने को कहा था। उसके लिए पंचकोल की आवश्यकता थी। किन्तु गाँव में कोई पंसारी नहीं था। इसलिये पंचकोल लेने के लिये उसे निकट की बस्ती में जाना पड़ा। बस्ती वहां से तीन मील दूर थी। वह घर से दो पैसा लेकर चला था। वे दो पैसे उसने अपने एक पड़ोसी से आधा सेर ज्वार के बदले में लिये थे। निस्सन्देह पंचकोल के लिये बहुत थे।

बस्ती में पहुंचकर उसकी दृष्टि हलवाई की दूकान पर पड़ी। उसे अपनी आठ वर्ष की कन्या पार्वती की याद हो आई। वह जब कभी बस्ती आता तब पार्वती के लिये खाने की कुछ चीज अवश्य ले जाता। इसके अतिरिक्त आज वह कई दिनों के बाद बाजार आया था। उसने सोच लिया कि वह पंचकोल एक ही

पैसे का लेगा। एक पैसे की उसने जलेबियां ले ली। दो से भी कुछ कम आईं। उसके बाद पंसारी की दूकान से पंचकोल की पुड़िया लेकर वह घर चल दिया।

उस समय दूकानों में सन्ध्या-प्रदीप प्रज्वलित हो चले थे। किन्तु बस्ती के बाहर अब भी अस्तोन्मुख सूर्य की सुनहली किरणें गेहूँ के पके हुए खेतों को और भी सुनहला बना रही थीं। बदल अकेला जा रहा था। स्थान की निर्जन अवसन्नता ने उसे चिन्ताशील बना दिया। वह सोचने लगा—फसल बिगड़ गई है, जमींदार का लगान देना है, साहूकार का कर्ज अदा करना है, पार्वती का विवाह करना है, पटवारी दादा परसों से बटवारे का रुपया मांग रहे हैं। ज्वार बेचकर उन्हें वह रुपया देना है—इसी प्रकार की सैकड़ों बातें।

इस समय वह सड़क के मोड़ पर पहुंच गया था। गांव वहां से अभी दो मील दूर था। सहसा बदल की दृष्टि सड़क पर खड़ी हुई एक मोटर पर पड़ी, जो पहले पेड़ों की ओट में छिपी थी। किसी साहब की थी, अकस्मात् फेल हो गई थी। ड्राइवर आध घंटे से उसे चालू करने की कोशिश में था। किन्तु वह टस से मस नहीं हो रही थी। हठीले असहयोगी की तरह साहब से पक्का निष्क्रिय-प्रतिरोध किये बैठी थी अन्त में ड्राइवर ने साहब से कहा 'हुजूर ब्रेक संभालें, मैं पीछे से ढकेलता हूं। फौरन स्टार्ट हो जायगी।'

साहब ने एक बार भ्रुकुटि-भङ्ग-पूर्वक ड्राइवर को देखा। फिर उठने का उपक्रम किया। इतने में उसकी नजर बदल

पर पड़ी। बदल मोटर गाड़ी देखकर सड़क के किनारे खड़ा हो गया था। उसने इतने पास से कभी मोटर नहीं देखी थी। 'वह कौतुक-पूर्ण दृष्टि से कभी साहब, कभी मोटर और कभी मोटर स्टार्ट करने के परिश्रम से क्लान्त हुए ड्राइवर को देख रहा था। साहब ने उसकी ओर अंगुल-निर्देश करके कहा 'यू !' बदल साहब की बात न समझा। किन्तु एकदम आगे बढ़ आया। साहब ने तब ड्राइवर से कहा–'वेल, इस आदमी से कहो, मोटर ढकेले।'

साहब जहां के तहां बैठ गये। ड्राइवर ने हैंडल गाड़ी में फेंककर साहब की आज्ञा का पालन किया। बदल से कहा, 'भाई जरा पीछे हाथ लगा दो। बदल मुस्कराया–शायद अपनी बैलगाड़ी की याद करके जो बीच मार्ग में इस प्रकार कभी नहीं रूठती। उसने एतराज नहीं किया। प्रस्तुत इस मोटर गाड़ी पर, बीच मार्ग में पंगु हो गए इस यंत्रयान पर अपने बल की परीक्षा करने के विचार से उसका उत्सुक ग्रामीण हृदय इस प्रकार की आत्म-तुष्टि-पूर्ण प्रसन्नता से पुलकित हो उठा। जलेबियों का दोना सड़क पर रखकर वह मोटर के पीछे लग गया। ड्राइवर ने 'हूं, कहा। बदल ने मोटर पर हथेलियां जमाकर जोर लगाया। मोटर खिसकी। वह खुश हुआ। ड्राइवर बोला 'वाह भैया, थोड़ा और।' बदल हुंकार करके मोटर ढकेलता हुआ बोला 'जितना कहो उतना, मोटर चली। आगे ढाल थी। तब बदल को दौड़ना पड़ा। सहसा फट-फट-फट। मोटर स्टार्ट क्या हुई, अपनी क्षणिक

दुर्बलता के ख्याल से लज्जित होकर मानवी शक्ति से अपना पिण्ड छड़ाने के लिये व्यग्र हो उठी। बदल कुछ भी नहीं समझा। समझने के पहले ही मोटर से उसके हाथ छूट गये। दूसरे क्षण वह औंधे मुंह सड़क की गिट्टी पर गिर पड़ा। अपनी सम्पूर्ण शक्ति से गिरा। मोटर मानों अट्टहास करके उसका उपहास करती, पथ की धूलि उड़ाती चली गई। एक मील निकल गई। बदल को तब तक होश न आया। चेत आते उसने अपना माथा टटोला। हाथ किसी चीज से भींग गया। उसे बड़ा अचम्भा हुआ। उसने पुनः टटोला। माथा फट गया था और उससे रुधिर की धार बह रही थी। उसने हथेली टेककर उठना चाहा। इस प्रयत्न में उसका सर्वाङ्ग धनुष की प्रत्यंचा की भांति कांप गया। घुटनों में असह्य पीड़ा बोध हुई। वह किसी तरह उठा और बायें हाथ की हथेली से क्षत-स्थान को दबाकर बैठ गया। रुधिर फिर भी निकलता रहा। क्रमशः उसका शरीर अवसन्न हो चला और वह अचेत होकर गिर पड़ा।

× × ×

उन्मुक्त खेतो की शीतल वायु के स्पर्श से बदल की आंख खुल गई। उसने अपने चारों ओर देखा। उस समय सबेरा हो रहा था। धीरे-धीरे उसे संध्या की घटना का स्मरण हुआ। रात में गहरी नींद आ जाने से उसकी दुर्बलता दूर हो गई थी। वह उठकर बैठ गया। उसे पत्नी की याद आई। वह उसके लिये पंचकोल लेकर लौट रहा था। और एक

हाथ में जलेबियों का दोना भी था। परन्तु ये दोनों चीजें उस स्थान पर नजर नहीं आईं। एक बार उसके जी में आया कि वह फिर से लौट कर बस्ती जाय। परन्तु अभी बाजार नहीं खुला होगा, इसके अतिरिक्त पंचकोल के लिये अब उसके पास पैसे भी नहीं थे।

वह हथेली टेककर उठा और गाँव की तरफ चल दिया। घुटनों में दर्द हो रहा था, इसलिए घर पहुंचते पहुंचते दिन चढ़ आया। पार्वती ने दूर से ही अपने पिता को देख लिया था। वह दौड़कर आई और उसकें घुटनों से लिपट गई। फिर अपने दीर्घ नेत्रों से उसकी ओर देखकर बोली 'दद्दा, रात भर कहाँ रहे ?'

बदल उसके माथे पर हाथ फेर कर बोला--'तुम्हारे लिए जलेबी लेने गया था।'

पार्वती ने तुरन्त पूछा--कहां है, लाओ ?'

बदल ने कहा--'थोड़ी देर में लाऊंगा।'

बदल भीतर पहुंचा। पैरों की आहट पाकर उसकी पत्नी पहले से द्वार की ओर देख रही थी। उसने बदल को देखते ही कहा--'कैसे आदमी हो--'

'क्यों ?'

'रात भर कहाँ रहे ?'

'क्या बताऊं !'

'कुछ तो, क्या किसी ने पकड़ लिया था ?'

'नहीं।

और यह धोती में क्या लगा है, सहसा रुधिर का कत्थई रंग का दाग देखकर उसने पूछा।

'कुछ नहीं। इसी वजह से तो रात में घर नहीं आ सका। एक जगह ठोकर खाकर गिर पड़ा था।'

'गिर पड़े ! राम, राम ! देखो तो कितनी चोट लग गई है। क्या लौटते समय अंधेरा हो गया था ?'

हाँ। थोड़ा हल्दी, चूना है ?'

'चूना कहाँ से आया ! हल्दी है, सो भी पीसी हुई नहीं है। भजन के यहाँ मिल जायगी। उसके यहाँ चूना भी होगा।

बदल घर से बाहर निकल कर अपने पड़ोसी के यहाँ पहुंचा। न जाने उसने मोटर ढकेलने से गिरने की बात अपनी पत्नी से क्यों नहीं कही। वह ऐसी लज्जा की बात शायद किसी से भी नहीं करना चाहता था। भजन के यहाँ उस समय गाँव के कई खास आदमी बैठे हुए थे-पटवारी, मुखिया, चौकीदार इत्यादि।

बदल ने सबको बारी-बारी से राम राम करके कहा--'भैया जभन, थोड़ा चूना और पीसी हुई हल्दी दे दो।'

उस समय, जान पड़ता है, वहां किसी संगीन मामले की चर्चा चल रही थी, क्योंकि बदल को देखकर सभी चुप हो गये।

भजन ने कहा--'सबेरे सबेरे हल्दी चूना किसे चढ़ाना है ?'

'क्या बताऊं, रात को ठोकर लग गई।'

'अच्छा ! दिखाई नहीं दिये। क्या बस्ती गये थे ?'

Raj Kumar
B.S.

'हाँ ।'

'तभी परबतिया रोती फिरती थी । क्या बहुत रात गए लौटे थे ?'

'अभी आया हूं ।'

'अभी ! तुमने सुना ?'

'क्या ?'

चौकीदार ने उसे देखा ।

परन्तु भजन को पूरी बात कहने की आदत थी । वह कहता गया--'हरपुरा के सुनू मोदी के यहाँ चोरी हो गई है ।'

बदल ने कहा--'राम, राम ! अच्छा, हल्दी चूना ला दो । फिर मुझे काम देखना है ।'

भजन ने भीतर से हल्दी चूना लाकर बदल को दिया । उसके चले जाने पर चौकीदार ने भजन को धमका कर कहा--'तुममें रत्ती भर की अक्ल नहीं ।'

'क्यों ?'--भजन ने पूछा ।'

'तुम क्या जानो ।'

पटवारी और मुखिया ने भी यही बात कही । इसके बाद सभा विसर्जित हो गई ।

× × ×

बदल दो पैसा उधार लेकर फिर से पंचकोल ले आया । इसके उपरान्त भोजन करके वह खेत पर जाने के लिये तैयार हुआ । घर से बाहर निकला ही था कि सामने मानिक चौकीदार को देखकर ठहर गया । 'बैठो, तमाखू पीलो ।'

मानिक ने अपने पीतल के तारों से सजे हुए मोटे चिकने डंडे पर शरीर का सारा भार डालकर कहा--'तमाखू फिर पिऊंगा, पहले मेरे साथ चलो।'

'कहाँ ?' बदल ने पूछा।

'थाने में।'

'थाने में किस लिए?'

'दारोगा जी ने बुलाया है।'

अपने स्वर को यथा शक्ति नम्र बनाकर बदल ने कहा--'दारोगा जी ने किस लिए बुलाया है, मानिक भैया।'

मानिक चौकीदार बारूद की भांति भभक कर बोला--'मैं क्या जानूं, किस लिए बुलाया है। उन्हीं से पूंछ लेना।'

बदल कुछ नहीं बोला, उसे मानिक से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। वह चुपचाप उसके साथ हो लिया।

उस समय दारोगा जी कुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे। जाति के जाट थे। अपने जाति-गत गुण के अनुसार कद के कुछ लम्बे थे, परन्तु बदन एकहरा था। उनके छोटे से चेहरे पर लम्बी काली दाढ़ी बहुत खूबसूरत नहीं मालूम होती थी। आँखें सुर्ख और हमेशा चढ़ी हुई रहती थीं। लम्बी नुकीली नाक शराब पीने से कुछ ज्यादा लाल हो गई थी। सामने जमीन पर सुनु मोदी और हरपुरा का चौकीदार बैठा था। वह उन्हीं से बातें कर रहे थे। इतने में बदल को साथ लेकर मानिक वहां उपस्थित हुआ।

बदल ने जमीन तक झुककर राम राम की और फिर चुपचाप खड़ा हो गया।

दारोगा जी ने कहा—'यह कहां मिला?'

मानिक बोला—'हुजूर, खेत पर जा रहा था।'

उन्होंने बदल से पूछा—'तू कल शाम को कहाँ गया था?

बदल ने कहा—'हुजूर बस्ती गया था।'

'किस लिए?'

'परबतिया की मां के लिए दवा लाने।'

'वहां से कब लौटा?'

'आज सबेरे।'

'तुझे यह चोट कहां लगी?'

हुजूर, क्या बताऊं, कर्मों का फल है—'

उसकी समझ में नहीं आया कि वह दारोगा जी से क्या कहे।

'हूं बदमाश!' दारोगा ने होंठ चबाकर कहा—'समझा है कि तू सब सच कह रहा है, और मैं भी उसे सच समझ रहा हूं। हरपुरा के चौकीदार ने तुझे नौ बजे करीब सुनू मोदी के मकान के पास घूमते देखा था—'

'नहीं हुजूर।' बदल ने घबरा कर कहा—'मैं तो कल हरपुरा गया ही नहीं। रात भर सड़क पर पड़ा रहा।'

'उसके बाद तू मोदी के घर में घुसा और शोरगुल होने पर उसकी एक सन्दूकची लेकर दीवार फांदकर भाग गया—'

बदल ने हांफते हुये कहा—'हुजूर, मुझ गरीब को बचा-

इए। परमेश्वर की सौगन्ध खाकर कहता हूं, मैं कल हरपुरा नहीं गया। सांझ को बस्ती से लौट रहा था—'

'हरामजादा! तुझे यह चोट कैसे लगी? चौकीदार ने खुद अपनी आंख से तुझे दीवार पर से कूदते देखा था। मगर तू फौरन उठकर भाग गया!'

बदल का कण्ठावरोध हो गया। उसने कहा—'हुजूर चोट तो मुझे मोटर ढकेलने से लगी है।'

दारोगा हो-हो करके हँस दिया। जैसे शराबी हँसता है। हूं! मोटर ढकेलने से लगी है? कौन सी मोटर?' और उसने पिसाही को संकेत किया।

बदल को चोरी के अपराध में छ: महीने की सजा हुई। इस समाचार पर यदि किसी को विश्वास नहीं हुआ तो उसकी पत्नी को। उसने कहा—'यह असम्भव है।' मगर और लोग यही कहते रहे कि उसने जरूर चोरी की है, नहीं तो रात भर रहा कहां? और ऐसी चोट घर फांदने के सिवा और किसी तरह लग ही कैसे सकती है?

—:o:—

श्री अज्ञेय

श्री अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन है आप पंजाब के रहने वाले युवक हैं, पर अधिकतर आप बाहर ही रहे हैं और प्रत्येक प्रान्त से आपने कुछ न कुछ लिया है। कुशल कवि होने के साथ साथ आप सिद्धहस्त कहानी लेखक और फोटोग्राफर भी हैं। जीवन के कटु अनुभवों और देश की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों ने आपके भावुक हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे आपकी लेखनी में तीव्रता और मार्मिकता आ गई है।

'भग्न दूत' के नाम से आपकी कविताओं का, और 'विपथगा' नाम से आपकी कहानियों का एक संग्रह हाल ही में छपा है। हिन्दी के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'विशाल भारत' कलकत्ता का सम्पादन भी आप कर चुके हैं।

पिछले युद्ध में आपने सैनिक पद स्वीकार करके पूर्वी कमान पर गये। वहां से लौटते ही प्रतीक नामक त्रैमासिक पत्र का सम्पादन आरम्भ किया है। आजकल आप श्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अभिनन्दन ग्रंथ के सम्पादन में व्यस्त हैं।

—:o:—

शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिए, और कहा, ज्ञान ! मैंने तुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है । उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो ।'

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है, और मानव-जाति उस अन्धकार में पथ'भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है । वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा--मैं मसीह हूं, पैगम्बर हूं, भगवान् का प्रतिनिधि हूं। मेरे पास तुम्हारे लिए एक मन्देश है ।

लेकिन किसी ने उसकी बात न सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हंस पड़ते, कुछ कहते पागल है, अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

× × × ×

आखिर तंग आकर वह एक अंधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा सा बच्चा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा, 'बहन क्यों रोती हो?'

उस स्त्री ने कहा, मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और भी दृढ़ हो गया है। उसने कहा, तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा, 'धर्म झूठा बंधन है। परमात्मा एक है, अबाध है, और

धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग करता है, अतः हमारा शत्रु है।'

लेकिन किसी ने कहा, जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने पास रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें ? वह समाज से पतित है, नीच है।

तब लोगों ने उसे समाज-च्युत करके बाहर निकाल दिया।

× × × ×

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना आवश्यक है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा 'ये धर्मध्वजी, ये पोंगे-पुरोहित-मुल्ला, ये कौन हैं ? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बाँध रखने का ? आओ, हम इन्हें दूर करदें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गए, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

× × × ×

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाए रखतें हैं, और उनसे लाभ

उठाते हैं ! पहले अपने को इस विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा तब समाज को तोड़ना होगा, तब...

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने, खाकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुर्रियां पड़ी थीं, आँखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा, 'आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोजी कमा सकूं। मैं विदेशी हूँ आपके देश में भूखा मर रहा हूँ। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।'

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा, 'मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूं।'

वह विदेशी एकाएक पिघल सा गया। बोला, 'अच्छा ! मैं आप के दुःख से दुःखी हूं। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखें मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए सब कुछ कर सकता हूं ?

× × × ×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा....

और उसने 'भूख के लड़ाकों' का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरों से धन छीन कर सब में समान रूप से बितरण करना, भूखों को रोटी देना, इत्यादि, लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़ मँगाया और एक पहाड़ी के किले में कैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे,धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूं कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है! यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूछा, कितना निरर्थक!

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते ऐसें एकदम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूं, लेकिन ऐसे संसार में मेरा कोई स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में

उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है, 'बस' अपने आपसे लड़ चुके ?

× × ×

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार से नीचे उतर आया और किले में चक्कर काटने लगा ।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं ।

--०--

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी का जन्म संवत् १९५६ वि० में हुआ था। आप मंगलपुर जिला कानपुर निवासी हैं और आजकल बंबई में रहते हैं। चौदह वर्ष की अवस्था से ही गृहस्थ-जीवन का उत्तरदायित्व सिर पर आ जाने के कारण आप उच्च शिक्षा से वंचित रह गये। पहले तो अपने गांव ही में कुछ काल तक अध्यापक रहे। परन्तु उस जीवन से संतुष्ट न होकर निकल भागे और होम-रूल लीग कानपुर की लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन हो गए। यहां आपको अध्ययन शीलता का ऐसा चसका लगा कि क्रम क्रम से कुछ साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों के सम्पादन विभाग में कार्य्य करने का सुअवसर पाते गए। चार वर्ष आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मन्त्री भी रह चुके हैं। इधर अनेक वर्षों से आप स्वतन्त्र रूप से एक साहित्य-सेवी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वाजपेयी जी का विकास बहुत साधारण जीवन से उठने के कारण, यद्यपि बहुत मन्द गति से हुआ है, तथापि जीवन का असंतोष, भयानक, कटु अनुभूतियों का समुद्रमंथन आपकी इस काल की कृतियों का एक गुण बन गया है। आपने बहुत लिखा है। आपके कई कहानी-संग्रह और उपन्यास छप चुके हैं। हाल ही में जो चीजें आप लिख रहे हैं वे काफी सुन्दर होती हैं।

'महापुरुष' आपकी एक सुन्दर व्यङ्ग्यपूर्ण रचना है।

महापुरुष

कचहरी में बैठा हूं––नाजिरात में। ऐसा ही कुछ काम आ गया है। यों काम चाहे न भी लगे, पर कभी-कभी जब मैं ऐसे काम में खुद लग जाता हूं, तो चारा क्या है ? जीवन में तृष्णा है और तृष्णा में द्वन्द्व और फिर द्वन्द्व ही जीवन है। महाचक्र के इस आवर्त्तन में मैं क्या हूं, कौन हूं, जो कचहरी से भागता रहूं, बचता रहूं और घृणा से विवर्ण हो-होकर व्यर्थ ही मैं अपने मन प्राण को आम्लान करता रहूं। द्वन्द्व से भागकर, कर्तव्य–पराङ्मुख होकर, मनुष्य जायगा कहां ? हाँ, तृष्णा से भाग सकता है वह। किन्तु क्षण भर के लिए। क्योंकि, अचिर भविष्य में, मनस्ताप से आप ही जल-जलकर, एक बार फिर जब वह फुत्कार कर उठता है, तो सुहासिनी तृष्णा की कोमल गोद ही उसे महोल्लास का पावन जीवन देती है।

हां, तो मैंने कहा न मैं नाजिरात में बैठा हूं। कुछ सोच रहा हूं और देख रहा हूं। सोच सोचकर देखता हूं और देख देखकर सोचता हूं। विवधप्रकार के चित्र सामने आ जा रहे हैं।

एक वकील साहिब पैंट में हाथ डाले हुए जा रहें हैं। गति उनकी मन्द है। कोट की बाहरी जेब में मोड़कर रक्खा हुआ चश्मा झलक रहा है। साइकिल पर आये हैं, और पैंट के निम्न भाग को मोड़कर जो क्लिप लगाया जाता है, वह अभी तक ज्यों का त्यों लगा हुआ है। उस ओर वकील साहिब का ध्यान नहीं गया है। ध्यान जाये भी क्यों? उसकी जरूरत? सिर के बाल सफेद हो गये। पूरे तो नहीं, अधिकांश। लेकिन इससे क्या, बालों की सफेदी कोई चीज़ नहीं होती। दिल जिसका उज्ज्वल है क्या उसके बाल कभी सफेद हो सकते हैं? हो भी जायँ, तो उनका मूल्य क्या? शरीर की वृद्धता हमारा करेगी क्या? असल चीज मन है। और वकील साहिब ने जेब में हाथ डालकर देखा, नोट कहीं गायब तो नहीं हो गये। तभी उन्हें निकाल कर गिनने लगे एक दो, तीन ठीक तो है। दस-दस रुपये के तीन नोट हैं और सुरक्षित हैं। फिर दूसरे हाथ से बाहरी जेब में से चश्मा निकालना चाहा। जरा सा ऊपर को उठाया भी, किन्तु फिर जहां का तहां रख दिया और बढ़ चले। किन्तु आगे चलकर फिर लौट पड़े। शायद कोई चीज भूल गये हैं।

इसी क्षण एक दूसरे साहब दीख पड़े। खसखसी दाढ़ी

है आपकी। बाल अभी सफेद नहीं हुए हैं। लेकिन इच्छा उनकी ऐसी ही जान पड़ती है। गौर वर्ण है। सिर पर गोल, सफेद मारकीन की टोपी है। पायजामा कुछ ऊंचा, पैरों के गर्द-गुबार से सर्वथा निश्चिन्त। हाथी-कान का पुराने ढब का जूता पहने हुए हैं। शरीर अचकन से चिपका हुआ है, या अचकन ही शरीर से चिपक गई है, कौन जाने ? इस विषय पर मैं बहस नहीं करना चाहता। आप चाहे जो समझ लें, मुझे आपत्ति नहीं। हां तो मैं आगे बढ़ता हूं। बाईं ओर एक दुलाई बग़ल से दबाये हुए हैं और उसके नीचे चारखाने का एक डस्टर लटक रहा है। दायें हाथ में टोंटीदार एक लोटा भी है। प्रतीत होता है कि आप इसी वक्त देहात से चले आ रहे हैं।

मैं बाहर आ गया था। जाड़े की धूप खड़ी-खड़ी खिल-खिला रही थी।

उन्होंने तपाक से आदाब अर्ज किया, तो अपरिचय के कारण मैं क्षण भर उन्हें देखता रह गया। उत्तर में मैंने 'तस-लीम अर्ज' तो किया लेकिन जरा सा ठहर कर।

वे बोले—क्यों भाई जान, बाबू चन्द्रप्रकाश साहब वकील किधर तशरीफ रखते हैं ?

मैं कहा—जान पड़ता है कचहरी में आप शायद पहली ही बार आये हैं।

'जी, आप बहुत बजा फ़रमाते हैं। मैं तो कम्बख्ती का मारा आ भी गया, मगर क़सम कुरान की, जो इसमें एक

हरफ भी झूठ हो--मेरे पुरखा तो इससे कोसों दूर रहा करतें थे।'

'यह तो नाज़िरात है, मुन्शी जी। यहां वकील लोग नहीं बैठते। वे लोग अधिकांश या तो पश्चिम की ओर बैठते हैं, वहां उनके अलग-अलग कमरे भी हैं। या फिर उस चौरासी गज वाली धर्मशाला में जिधर से आप आ रहे हैं।'

'अच्छा, तो आप को जो तकलीफ दी, उसके लिए माफ़ कीजियेगा। हुजूर का दौलतखाना ?'

'मैं ! मैं तो परदेशी आदमी हूं, यहाँ, ऐसे ही आ गया। (इस) ग़रीब का घर कानपुर जिले में है।'

'तभी। तभी तो मुझे ताज्जुब हो रहा था कि ऐसी सुलझी हुई ज़बान यहाँ इलाहाबाद में कहाँ से आयेगी ! अच्छा, इजाजत चाहता हूं--आदाबर्ज।'

वे चले गये।

चले तो गये, लेकिन आगे बढ़कर, जो साहब उनके सामने आये, उनसे भी उन्होंने यही प्रश्न किया--क्यों भाई जान, बाबू चन्द्रप्रकाश वकील......?

'मैं बाबू चन्द्रप्रकाश का मुहर्रिर हूं कि मुअक्किल, जो उनके पीछे पीछे घूमता होऊँ।'

ऊपर से नीचे तक अंग्रेजी वेष-भूषा में आवृत हैं। सरदी में सताये हुए कभी-कभी सी-सी करने लगते हैं। हवा जो चल रही है। हाथ पर हाथ रगड़ रहे हैं। मुन्शी जी के

प्रश्न पर जरा देर ठहरे और फिर चल दिये और खीज उठे। वोले–अजीब देहाती आदमी मिल जाते हैं!

ये साहिब एक बैरिस्टर हैं। अपने एक मित्र से पूछकर मैं अभी जान सका हूं। कर्कश बहुत हैं आप, प्रायः कहा करते हैं--दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए हैं, सब इसी तरह के थे। लोग बात करना तो दूर रहा, उनके सामने होकर निकलने से भी कांपते हैं। आतङ्क वह चीज है कि मोची को मंत्री तक बना सकता है।

मेरा काम हो चुका है। बस, मुझे किसी तरह यहां चार बजा देने हैं। और अपने मित्र राजेश्वर के साथ चला जाना है इसी नाजिरात में वह क्लर्क है। मैंने सोचा–जरा सा घूम ही लूँ। ऐसा सजीव बायस्कोप भला और कहां देखने को मिलेगा ?

एक-एक करके कई इजलासों में घूम आया। कहीं कोई परिचित व्यक्ति नहीं देख पड़ा। न मुन्शी जी ही देख पड़े, न वे वकील साहब--न वे भावी महापुरुष। और मैं सोचता यही हूं कि इन्हीं लोगों में से कोई मिल जाता तो अच्छा होता। वकील साहब को केवल थोड़ी देर देखना चाहता हूं। बैरिस्टर साहब से उलझ पड़ने को मन है और मुन्शी जी से मिलकर उनकी बातें सुनने की लालसा है।

एक ओर पीपल के पेड़तले धूल से लिपटा हुआ मैं चुप-चाप खड़ा हुआ था कि राजेश्वर ने आफिस से बाहर आकर कहा–चलो तुमको घुमा लायें। यहां खड़े-खड़े अकेले में तुम्हारा

जी ऊब रहा होगा...अरे सुनो महाराज, कोई ताज़ी गरम चीज भी बनाई है ?

'समोसे बन रहे हैं । पाव भर ले आऊं ?'

'और कोई मीठी चीज ?'

'बरफी बहुत बढ़िया है ।'

'दोनों आध-आध पाव । लेकिन यहां मत लाना । कोई ...। चलो वहीं चलें । तीन बज गया । भूख जग उठी है । काम में तबीयत नहीं लग रही थी ।' कहते हुए मेरे कन्धे पर हाथ रखकर राजेश्वर चल दिया । हम लोग अभी महाराज के पास पहुँच भी न पाये थे कि दिखलाई पड़े मुन्शी जी । राजेश्वर का साथ छोड़कर मैं तुरन्त उधर बढ़ गया । राजेश्वर पूछता ही रह गया—अरे कहां जाते हो ? कुछ खाये तो जाओ । लेकिन मुझे तो इस समय दूसरी ही खूराक चाहिये थी ।

निकट पहुंचते ही मैंने पूछा—–कहिए, भेंट हुई !

कहां हो सकी । वे अपने स्थान पर भी नहीं मिले ।

यहीं कहीं होंगे—उनके मुन्शी जी कह रहे हैं ।

'उनको आप पहचानते हैं ?'

'यही तो मुसीबत है ।'

'तो उनके मुन्शी से क्यों नहीं कहा कि उनसे मिला दें ।'

'कहना चाहता था, लेकिन कहता कैसे ? हो सकता है कि इस के लिए भी वह कोई सवाल कर बैठता । आप को तो मालूम ही है कि यहां बिना पैसे के कोई काम नहीं होता ।'

'लेकिन यह तो उसी का फ़र्ज था। इसमें पैसे की कौन बात थी?'

'फर्ज क्या चीज है और किस वक्त पर, किस ओर से वह शुरू हुआ करता है, इसका फैसला भी तो यही लोग, सुना है, कि अपने आप कर लिया करते हैं।'

'चलिए, मैं आप के संग चलता हूं। उनके मुन्शी को एक ऐसी डपट बताता हूं कि वह भी याद करे। यह भी नहीं सोचा कि जिनसे काम निकलता है, उनकी सुगमता की ओर भी तो जरा ध्यान देना होता है!'

'मैं मुन्शी जी के साथ चल दिया।'

चलते-चलते मैंने पूछा—आप किस काम से आये हैं?

'एक रुक्के की नालिश करनी है। रुपये की अवधि पूरी हुई जाती है। दोस्तों ने कहा—'डिग्री करवा लो। पीछे वसूल होने का मौका तो रहेगा।'

'आसामी की हैसियत क्या है?' मैंने पूछा।

'हैसियत की बात न पूछिये। एक जोड़ी बैल की खेती करता है। जिस वक्त रुपया दिया था, काफी खुशहाल था। अब वह बात तो नहीं रही, लेकिन देना चाहता, तो थोड़ा थोड़ा करके भी दे सकता था।' वे बोले।

'अभी आपने तगादा भी किया?'

'तगादा! तगादा करना मैंने उचित नहीं समझा। बहुत सीधा आदमी है। चचा—चचा कहते उसकी जबान से फूल झड़ते हैं।,

मैं चुप रह गया 'तगादा उन्होंने कभी किया नहीं। आदमी भी वह बहुत सीधा है, और देना चाहता तो थोड़ा-थोड़ा करके दे भी सकता था। आखिर इसका मतलब क्या है।' सोचते हुए मैंने उनकी ओर देखा। बड़े परेशान नजर आ रहे थे। मुद्रा पर उद्दाम अनुशोचन स्पष्ट झलक रहा था। बोले—मेरा मतलब उसे परेशान करना नहीं है। मैं तो केवल कायदे की कारवाई करने चला आया हूं। मुझे डिग्री इजरा नहीं करनी है। लेकिन मनुष्य का जीवन तो केवल फर्ज को लेकर ही है न ? आप ने मेरा मतलब समझा कि नहीं ?

अब हम लोग बाबू चन्द्रप्रकाश के कमरे में थे। मुन्शी बोला—बाबू साहब आते ही होंगे। आप नाहक परेशान हो रहे हैं। तशरीफ रखिये।

वे जमीन से बिछे हुए टाट पर बैठ गये।

मैंने देखा, दुलाई और लोटा एक जगह कोने में बदस्तूर रक्खा है, तो पूछ दिया——आप खाना खा चुके की नहीं ?

'खाना तो आजकल शाम को ही मिलता है, क्योंकि रमजान के दिन हैं।' कहते हुए एकाएक उनके मुख पर सात्विक दृढ़ता का अकृत्रिम उल्लास मुखरित हो उठा। अब मैंने सोचा राजेश्वर क्या कहता होगा।

और तब—

राजेश्वर ? वह भूखा है, क्योंकि उसने नौ बजे खाना खाया है और क्योंकि समोसे ताजे बन रहे हैं।

और मुन्शी जी देहात से दस मील पैदल आये हैं। और

उनके मुख पर रमजान का मृदुल प्यार आलोकित हो रहा है।

मुर्हरिर से कहा–

'क्यों मुन्शी जी, इसी तरह से आप वकील साहब के साथ अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। ये वकील साहब से मिलने के लिये कितने उत्सुक हैं, आपको कदाचित् इसका ज्ञान भी हो चुका है। इनका काम आवश्यक भी हो सकता है, यह भी आप सोच सकते हैं, तो भी आप इनको तुरन्त उनसे मिला देने की जरूरत नहीं समझते। क्यों?'

तुरन्त उत्तर–

'मैं एक और जरूरी काम में लगा हुआ था।...चलिये आप मेरे साथ चले चलिये।' उधर से वकील साहब आ रहे थे। बहुत परेशान से दीख पड़े। मुख पर हवाइयां उड़ रही थीं अपने मुन्शी को देखते ही बोले––वे तीनों नोट मालूम नहीं कहाँ गिर पड़े।

'नोट गिर पड़े।' चकित मुद्रा से मुन्शी बोला।

'क्या फरमाया आपने? नोट गिर पड़े। कितने के नोट थे। कब, कहाँ गिर पड़े?' मौलाना ने पूछ दिया।

वकील साहब अप्रतिभ तो थे, किन्तु मौलाना के प्रश्न पर 'किस वक्त, कहाँ गिर पड़े' उनके होठों पर क्षणिक हास उदय होकर अस्त हो गया। नोट कहाँ गिर पड़े हैं, यह भी क्या उनके ज्ञान की बात है?

खैर साहब हम सब वकील साहब के कमरे में आकर बैठ गये।

मुन्शी बोला--बतलाइये, कहाँ खोजूं ?

वकील साहब बोले---खोजने की जरूरत नहीं है। सुबह से ही मुझे डर लग रहा था कहीं गिर न पड़े। वही बात हुई। उसी जेब में और भी कई कागजात थे। कई बार उनको निकालने की जरूरत पड़ी थी। किसी वक्त वे नोट भी साथ ही निकल कर गिर पड़े होंगे। अब क्या हो सकता है जो चीज जाने वाली है। उसके जाने का आश्चर्य क्या ? (मुन्शी से बोले) जाओ, मैं चेक देता हूं। बैंक से रुपया ले आओ।

'लेकिन अब तो सवा तीन हो रहा है !' मुन्शी बोला। 'तो त्रिवेणी बाबू की नालिश आज भी रह गई।' कहते हुए उनकी फायल देखने लगे।

मैंने कहा--ये मौलाना बड़ी देर से आप को खोज रहे थे। देहात से आये हैं। इनको आप से जरूरी काम है। उचित होगा, आप इनकी बात भी सुन लें।

'मेरा काम ऐसा नहीं है कि उसे आज ही कर डालने की जरूरत हो आप इतमीनान से अपने कागजात देख लीजिये। यों ही मुझे वापिस नहीं जाना है। मकान पर सारा मामला समझा दूंगा। यहाँ आप को परेशानी भी हो सकती है।' कह-कर संकेत से मौलाना मुझे लेकर बाहर आ गये।

हम लोग फिर बाहर धूप में आकर खड़े हो गये।

मौलाना बोले--मुझे कुछ शक हो रहा है। कहिए कहूं। कहिए न कहूं ?

'कहिए, कहिए ! न कहने की बात हो, तो भी तबियत हो तो कह डालिए।' मैंने कहा।

एक साहब से मैंने इन वकील साहब का पता पूछा था। वे जरा बिगड़े दिल थे, बड़बड़ा उठे। मैं उनकी शक्ल देखता रह गया। उसके बाद इन वकील साहब को खोजने के सिलसिले में मैं जो इधर-उधर घूमता फिरा, तो वे साहब एक जगह पड़े हुए कुछ कागजात उठाते हुए दीख पड़े। मैंने समझा--उनके होंगे लेकिन......।'

इसी 'लेकिन' के साथ उनका वक्तव्य स्थिर होकर रह गया। मैं उस समय उनसे कुछ कह नहीं सका। सन्देह अन्ततः सन्देह ही है। उसका अस्तित्व क्या ? बहु तेरी निराधार बातें मानस पर आ-आकर तैरती रहती है। क्षण-क्षण पर हमारे भीतर अनेक प्रश्नोत्तर उत्थित-विनष्ट होते रहते हैं। मैं कैसे कहूं कि बैरिस्टर ऐसा काम कर सकता है !

उसी क्षण राजेश्वर ने देख लिया। दूर से ही बोला--विचित्र सनकी आदमी हो। मैं बुलाता ही रह गया और तुमने ध्यान नहीं दिया। महाराज के यहाँ भी मैंने इन्तजार किया--लेकिन तुम बेकार यहाँ खड़े-खड़े मौलाना का वक्त ख़राब कर रहे हो। यहाँ आये ही थे, तो कोई फौजदारी का मामला देखते कहानी के लिये कोई चीज़ ही मिलती। लेकिन

तुम ठहरे एक नम्बर के चुगद !. . .आओ, चलो, इधर। मौलाना साहब क्षमा कीजिएगा।

बाँह में हाथ डाल कर राजेश्वर ने मुझे अपने साथ कर लिया। मैंने और उपाय न देखकर मौलाना से कह दिया–आप वकील साहब के यहाँ तशरीफ़ रक्खें। मैं अभी आता हूं।

राजेश्वर बोला यानी इन मौलाना को तुमने क्यों फाँस रक्खा है ? इनसे तुम्हारी कब की दोस्ती है, कभी इनके घर भी गये हो, ये मुझे नहीं जानते, लेकिन मैं इनसे परिचित हूं।

'मनुष्य की कुछ इज्जत करना सीखो' मैंने जल कर कहा।

'ओह ! यह कहो कि बिहारी बाबू न होकर तुम कोई महात्मा हो––देवता ! सातवें आकाश से बोल रहे हो ! अरे ज़मीन पर चलो, मियां, ज़मीन पर।'

'अच्छा तो मुझे जाने दो। मैं इस तरह. . . . . .मुझे यह तरीका. . . . . .तुम्हें शर्म आनी चाहिए।'

उसे बरबस छोड़कर मैं भागने लगा, तो वह एकदम से प्रतिहत होकर बोल उठा––

'माफ करो बिहारी बाबू !'

क्षण भर तक हम दोनों मौन रहे।

राजेश्वर बोला––तुम नहीं जानते, मैं तुम्हारी कितनी इज्जत करता हूं। लेकिन मैं करूं क्या, मैं अगर इस तरह से न रहूं, तो यह क्लर्की मेरा प्राण लेकर दम ले। तुम जानते हो, आदमी मशीन तो नहीं बन सकता।

मैं अब भी चुप रहा।

'कुछ खा लो तो मैं निश्चिन्त होकर अपने काम में लगूं। मेरे साथ ही खाया था। मैं खा भी चुका, और तुम...तुमको भूख लगी होगी।' वह बोला।

'अच्छा, मैं जरा मौलाना से मिल आऊं। अभी आता हूं। खाना तो अब मैं तुम्हारे घर पर ही खाऊँगा। तुम ठीक चार बजे तो मेरे साथ चल दोगे न?'

'चार बजे! चार बजे तो नाजिर जी भी नहीं उठते। अच्छा, आज उनसे कहकर कुछ पहले ही चला चलूंगा।'

मैं मौलाना के पास चल दिया। वे अभी तक वहीं खड़े-खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं जो उनके निकट पहुंचा तो वे बोले--अब मैं लौट जाना चाहता हूं, पण्डित जी। मैं नाहक आया। रुपया वसूल हो, चाहे न हो। मैं उस आसामी पर नालिश नहीं कर सकता। वह जब मुझ से चचा कहकर बात करेगा, तो उसके सामने मेरी आँखें लच जायेंगी। थोड़े से रुपये के लिये मैं अपनी ही नजरों से गिरना नहीं चाहता। और रुपया भी मेरा खयाल है, अगर मैं तगादा करूं तो वह दे देगा। उन्होंने इन शब्दों के साथ अपना हाथ बढ़ा दिया। फिर हाथ मिलाते हुए वे बोले--आप से मिलकर खुशी हुई। क्या आप कभी मेरे गरीबखाने पर आ सकते हैं? मैं उनकी ज्योतिर्मयी मुद्रा को ही देखता रह गया। कुछ कह नहीं सका। वे बोले--आप जैसा कोई भी आदमी मेरी नजरों से अभी तक नहीं गुजरा था और मैं तो कभी खयाल

में भी न ला सकता था कि ऐसी जगह में आप जैसे लोग भी मिल सकते हैं।

अब मुझ से चुप नहीं रहा जा सका। मैंने कहा—मैं नहीं जानता, किस तरह आपको धन्यवाद दूं?

मौलाना से विदा लेकर फिर मैं फौजदारी अदालत की ओर जा निकला। बराण्डे में खड़े-खड़े वही बैरिस्टर साहब अपने किसी साथी से कह रहे थे--उल्लू हो तुम!--चान्स खोते हो। चान्स खोने वाला आदमी कभी उन्नति नहीं कर सकता। तुमको आश्चर्य होगा कि आज एक मिनट में मैंने तीस रुपये पैदा किये।

श्रीमती शिवरानीदेवी

स्व० प्रेमचन्द की धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानी देवी जी के नाम से जब हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में सुन्दर कहानियां निकलने लगीं तो बहुत लोगों को संदेह हुआ था कि स्वयं स्व० प्रेमचन्द ही आप लिख कर अपनी पत्नी के नाम कहानियां छपवाते हैं। किन्तु उनकी यह धारणा कितनी भ्रम-पूर्ण थी यह इस बात से सिद्ध होता है कि प्रेमचन्द के निधन के बाद आज भी श्रीमती शिवरानीदेवी बराबर कहानियां लिख रहीं हैं।

देवी जी ने अपने स्वामी की कृतियों को पढ़ कर अपने हृदय में कहानी लिखने की एक प्रबल प्रेरणा पाई। देर तक आप अपने पति को बिना बताए कहानियां लिख कर फाड़ती रहीं। पर सुगन्धि छिपाए से कब छिप सकती है। अन्त में उन्हें पता लग गया। पहले पहले की कहानियों को स्व० प्रेमचन्द ने देखा। पर बाद को समया-भाव के कारण वे ऐसा न कर सके और श्रीमती शिवरानीदेवी स्वयं ही अपनी पथ-प्रदर्शक बन गई।

कहानी के उद्देश्य के सम्बन्ध में उनके विचार अपने स्व० पति से मिलते हैं।

आपके दो कहानी संग्रह 'नारी हृदय' और 'कौमुदी' सरस्वती प्रेस' काशी से प्रकाशित हो चुके हैं। पिछले वर्षों आपने "प्रेमचन्द घर में" नामक पुस्तक लिखी है। जिससे प्रेमचन्द जी के घरेलू जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

'विमाता' आपकी सुन्दर रचना है।

—:o:—

विमाता

मुन्शी रमाकान्त की स्त्री का जब देहान्त हुआ तो मुन्शी जी का पुत्र सोहन पन्द्रह साल का था। घर में मुन्शी जी की मां थीं। वही सब काम करती थीं। और मुन्शी जी की स्त्री के मरने की देर थी कि ब्याह के लिये न्योते आने लगे।

मुन्शी जी ने वह प्रस्ताव अपनी मां से कहा। दुनिया देख चुकी थी, बोली--बेटा, मेरी राय पूछते हो, तो मैं यही कहूंगी कि तुम अब इन रोगों में न पड़ो। क्योंकि तुम्हारे अब एक लड़का है। तुमको अब सिर्फ अपना ही ध्यान नहीं रखना है, बल्कि सोहन का भी। और फिर आमदनी का यह हाल है--मुश्किल से रो-धोकर महीना बीतता है। अगर तुमको घर ही बसाने की फ़िक्र है, तो दो-चार साल में सोहन ही का ब्याह करके घर बसा लेना।

मुन्शी जी बोले--अम्माँ, तुम्हीं सोचो, मुझे कोई पानी देने को चाहिए कि नहीं ? आज तो तुम हो, लेकिन कल को कोई एक रोटी भी देने वाला तो नहीं है। फिर लड़के के लिए भी मां की जरूरत है ही, नहीं तो मान लो तुम मर गई बहू को कौन संभालेगा, कौन देख भाल करेगा ? फिर मैं ही बीमार-ईमार हो जाऊं तो सेवा-बर्दाश्त कौन करेगा ?

मां बोली--बेटा, जैसा मुझे पसन्द था मैंने कह दिया--फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।

मुन्शी जी माँ से बोले–सब कहते हैं कि वह घर के काम-काज में बड़ी कुशल है और बच्चों से उसको बड़ा प्रेम है। लोगों का तो कहना है कि पैसे का काम पाई में करने वाली है।

माँ--तो फिर ठीक है। इसी तरह की बहू की तो जरूरत है जो सोहन को आराम से रखे और अपना घर देखे। और क्या चाहिए बेटा ! सोहन का नाम लेते ही लेते माँ रो दीं। हाय ! वह देवी मरने योग्य थी ? सब भगवान की मरजी है।

मुन्शी जी बाहर चले गये।

(२)

कुछ समय बाद उनका ब्याह हो गया। नई बहू आ गई। वह घर के कामों में कुशल थी। पैसे का काम पाई में होने लगा। माँ खामोश थी, बहू बड़ी अच्छी है। मुन्शी जी भी नई बहू को बहुत प्यार करते थे। गृहिणी की चातुरी देख

मुन्शी जी अपने मित्रों में उसकी प्रशंसा के पुल बाँधतें थे। पहले रुपये पैसे माँ के हाथ में रहते थे तो सोहन को आराम था।

दो-एक बार नई बहू रम्भा देवी ने इशारे से कहा—अम्मा जब तुम्हीं घर-गृहस्थी संभाल सकती थीं, तो फिर मुझे ब्याह कर लाने की क्या जरूरत थी ?

माँ, भांपकर बोली—–बेटी, बड़ी ख़ुशी की बात है। तुम्हीं अब घर देख लोगी तो मुझे भी छुट्टी मिल जायेगी।

माँ चाभी रम्भा को देकर मुक्त हो गई।

रम्भा देवी सोहन को फुटी आँखों नहीं देख सकती थीं। सोहन बाहर से आया तो बोला--चाची, मुझे पांच रुपये दे दो, मैं किताब लेने चौक जाता हूं।

रम्भा आँखें फैलाकर बोली—अभी रुपये नहीं हैं।

सोहन बोला—तुम कहती हो रुपये नहीं हैं, और अब मेरे इम्तहान सिर पर, किताब का कहीं पता नहीं।

रम्भा—किसी से माँगकर क्यों नहीं पढ़ता ? सोहन को गुस्सा आ गया, बोला—जब बाप का पैसा नहीं निकलता तो दूसरे क्यों देने लगे ?

रम्भा क्रोध से बोली—ठीक ही है। जब तेरा बाप ही मर गया तो मैं किसकी कमाई दूंगी। आज आने दो तो कहती हूँ कि तुम्हारा लाड़ला कहता है कि मेरा बाप तो मर गया।

सोहन उसको रोककर बोला—क्यों व्यर्थ मेरे ऊपर तोहमत कसती हो ? मैंने मरने-जीने का तो नाम तक नहीं लिया।

रम्भा–चुप हो, नहीं तो कहे देती हूँ। झूठा कहीं का, मक्कार! मेरे ही मुह पर कहता है और मुझे ही झूठी बनाता है।

सोहन आँखों में आँसू भरकर बाहर चला गया।

शाम को जब मुन्शी जी आये, तो रम्भा खाट पर लेटी हुई थी। मुन्शी जी ने जल्दी से कपड़े बदले और रम्भा के पास जाकर बोले-कैसी तबियत है?

रम्भा बोली–तबीयत को क्या हुआ है? मुझसे मौत भी डरती है, क्योंकि मैं अभागिनी हूँ न! यही घर भाग्य में था जहाँ रात-दिन किच-किच होती रहती है!

मुन्शी जी हँसकर बोले–रम्भा, तू बड़ी पागल है। तेरा ब्याह मुझ से हुआ कि घर से। अगर सोहन ने कुछ कहा है, तो बतला, अब मैं उसका जिम्मेदार नहीं। अब वह भी जवान हो गया।

रम्भा बोली–तुम्हीं को तो कहता था कि मेरा बाप मर गया, और न जाने क्या-क्या बकता था। मैंने मना किया कि क्यों उनको कोसते हो, तो मारने दौड़ा। और कहता है कि तुम दोनों का मुह देखना पाप है।

मुन्शी जी–किस लिए लड़ता था, और कहाँ गया?

रम्भा–लड़ता था कि बीस रुपये दे दो। मैंने कहा कि तनख्वाह मिलेगी, कल दूँगी, आज मेरे पास बीस रुपये नहीं हैं। तब तुम्हारा नाम लेकर कहने लगा कि अब समझ लूँ कि मर गये? उसी पर मैंने मना किया कि रुपये के लिये मत

कोसो, दिन-घड़ी कैसी लगी है । उसी पर मुझे मारने उठा था ।

मुन्शी जी–है कहाँ ?

रम्भा–है कहां, मैं क्या जानूं ? तुम्हारी माँ पण्डित जी के घर मिलने गई हैं, उन्हीं के पास गया होगा । अभी वह भी फौज लेकर आयेंगी ।

मुन्शी जी–अच्छा तो अम्मा भी शह देती हैं ।

रम्भा––तब क्या तुम समझते थे वह अच्छी बातें बतलायेंगी । वह तो और भी फ़ूटी आँखों नहीं देख सकतीं ।

मुन्शी जी––मेरी समझ में नहीं आता, मैंने इन लोगों का क्या बिगाड़ा है ?

रम्भा––कुछ नहीं, मैं ही काँटा हूँ, किन्तु इसमें मेरा क्या बस ! तुम्हें चाहिए था कि सब की राय से ब्याह करते । जब मैं गहने और कपड़े पहनती हूँ, अम्मां जी रोती जरूर हैं । मैंने क्या सोहन की माँ को मार डाला है ? फिर जब मैंनें सोहन के बाप ही को ले लिया तो फिर गहने और कपड़े की बात ही क्या ।

मुन्शी जी––तब सोहन का क्या बिगड़ता है ?

रम्भा––क्यों नहीं बिगड़ता है ? सब से कहता तो फिरता है । रोता घर-घर है ।

मुन्शी जी––ऐसा ही चाल-चलन है तो अभी क्या रोता है, अभी और रोएगा ।

किसी ने मुन्शी जी को बाहर से आवाज दी और वह बाहर चले गये ।

(३)

सोहन अपनी दादी के पास बैठा था ।

बाहर से मुन्शी जी ने गुहार लगाई सोहन यहाँ आ, आज कल तेरा मिजाज बहुत बिगड़ गया है तो तेरे लिए घर में जगह नहीं । अब तू भी जवान हुआ, कमा-खा ।

बूढ़ी माँ रोकर बोली—क्यों तुम दोनों रात-दिन बेचारे का दिल दुखाया करते हो? उसने क्या किया है बेटा !

मुन्शी जी आपे से बाहर होकर बोले—चुप रहो । तुम्हीं ने उसको सिर चढ़ा रक्खा है ।

बूढ़ी माँ को भी तैश आ गया, बोली—मैंने क्या सिर चढ़ा रखा है ? हाँ, अनर्थ नहीं देखा जाता । मैं कहती हूँ, क्या उसकी माँ मर गई तो उसके प्राण ही लेकर छोड़ोगे ?

मुन्शी जी—उसके प्राण कौन ले सकता है । मैंने उसकी जिन्दगी भर का ठेका तो नहीं ले लिया है । हाथ-पैर वाला हुआ, कमाता-खाता क्यों नहीं ? मेरे और भी तो बच्चे हैं-क्या सिर्फ उसी को पालना है ? अब वह मेरे घर में नहीं रह सकता ।

बूढ़ी माँ—खैर, जैसी तुम्हारी मरजी । मुझे क्या करना है । मैं भी तो गाँव जाना चाहती हूं, तब तुम्हें जैसा अच्छा लगे, करना ।

मुन्शी जी—मैं तुम्हें नहीं रोक सकता तुम दोनों जाओ । तुम्हारे पीछे मैं अपना घर नहीं चौपट कर सकता ।

बूढ़ी माँ--तो आज शाम की गाड़ी से मैं जाती हूं। जैसा तुम्हें उचित दीखे, करना।

मुन्शी जी–शौक से। मैंने बहुत सहा, अब नहीं सहा जाता।

रम्भा आकर बोली--सब नखरा है जब घरवालों को भी यहाँ से खाने को जाता है तो रोटियाँ चलती हैं। जान पड़ता है कि घर में सब धन्ना सेठ ही हैं।

बूढ़ी मां ने कुछ उत्तर न दिया। रम्भा चुप हो गई।

मुन्शी जी रम्भा से बोले–भोजन तैयार है? मुझे एक दोस्त से मिलने जाना है। बारह बजे का समय दिया था।

रम्भा बोली--चलिए, भोजन तैयार है। अभी तो बहुत समय है। दोनों चले गये।

तब बूढ़ी मां को याद आई। सोहन को इधर-उधर देखा, कहीं दिखाई न दिया। सोचा, कहाँ चला गया? आज रात को हम लोगों को चला ही जाना चाहिए। जिस घर में अपने को कोई न पूछता हो, उसमें रहना व्यर्थ है फिर आज बेटे की बातों से मालूम हो गया कि जब वह अपने बेटे को निकाल सकता है, तो मेरी क्या हस्ती। फिर सोचती है कि मैं सोहन को अगर लेकर चली जाऊंगी, तो उसका पढ़ना छूट जायगा। उसकी जिन्दगी चौपट हो जायगी। फिर बेचारी बुढ़िया सोचती है, क्यों न साल-दो-साल और बिता दूं जिसमें सोहन को रोटी का सहारा हो जाय? तब देखा जायगा। सोचते-सोचते बुढ़िया को रोना आ गया...

(४)

आज सोहन आठ दिन से गायब है। घर में सब लोग खुश हैं। रोता कौन है ? बूढ़ी दादी न खाती है, न पीती है और न किसी को मनाने की फुरसत ही है।

बूढ़ी मां बेटे से रोकर बोली--तुमने सोहन को निकाल कर ही दम लिया। ठीक है, मुझे घर पहुंचा दो। मैं तुम्हारे घर में रहना अब पाप समझती हूं।

मुन्शी जी बोले--जाना हो जाओ। लेकिन मैंने न सोहन को ही निकाला है और न तुम्हें ही निकालता हूं फ़िर सोहन लड़की तो है नहीं कि चला गया तो बदनामी होगी। अच्छा हुआ अपना कमाये-खाये। इसको मैं बुरा नहीं मानता।

रम्भा आकर बोली-देखो अम्मा, रात-दिन रोना अच्छा नहीं होता। ठीक से रहना हो तो रहो नहीं घर जाने को कह रही थी तो जा सकती हो, कोई तुमको बाँधे तो है नहीं। आज तुमने मोहन को पीटा है। मैं तुम्हारे लिए बुरी हूं न कि मोहन। मोहन भी तुम्हारा ही है। लेकिन मेरी दुश्मनी अगर बच्चे से निकालोगी तो बुरा होगा।

मुन्शी जी--इनका दिमाग खराब हो गया है। इनके लिए सब से ठीक घर जाना है, और कोई दवा नहीं। यह रात-दिन सब का घर में रहना हराम कर देंगी।

रम्भा मुंह बिचका कर बोली--मेरी तो आपने मिट्टी खराब कर दी और क्या। और आंखों में झूठे आंसू भरकर चली गई।

मुन्शी ज़ी रम्भा के साथ-साथ कमरे में जाकर बोले-- रम्भा तुम क्यों रोती हो। तुम्हारा रोना देखकर मैं अपने को काबू में नहीं रख सकता। प्रिये, मेरा खयाल करके तुम खुश रहा करो।

रम्भा--खुश रहने में ही क्या मिलता है।

मुन्शी जी--सब दुनिया है जी। सब अपना-अपना ही रोना रोते रहते हैं।

मोहन बाहर से आकर पिता की गोद में चढ़ गया। मुन्शी जी उसको बाहर लेकर चले गये। बूढ़ी माँ घर चली गई। रम्भा की माँ और भाई आ गये। और घर में जो दो आदमियों की कमी हो गई थी वह पूरी हो गई।

अब मुन्शी जी और रम्भा दोनों खुश हैं।

मुन्शी जी बोले--घर रुपये भेजने हैं रम्भा, भैया का खत आया है खेती में कुछ हुआ नहीं, और एक बैल भी मर गया है। लिखा है कि रुपये के बिना घर में बड़ी तकलीफ है। इस लिये कुछ रुपये हो तो भेज दो।

रम्भा मुंह बनाकर बोली--क्या यहाँ डाल में रुपये फलते हैं, या चबैनी है कि सबको मुट्ठी-मुट्ठी भर बाँट दिया जाय ? सब के बाल बच्चे हैं। हमारे क्या कोई खाने वाला नहीं है ?

मुन्शी जी बोले--भाई माँ को खिलाना मेरा फर्ज है।

रम्भा--तो माँ क्यों चली गई ?

मुन्शी जी हंसकर बोले--अजी तुम भी खूब हो खैर, जो लिखा था तुमको बता दिया। अब जैसी तुम्हारी राय हो।

रम्भा—कुछ नहीं जायेगा। सभी के घर होता है। हाँ मैं तो भूल ही गई थी। सोनार के यहां से मेरा कड़ा नहीं आया। आज ही तो देने को कहा था।

मुन्शी जी--अजी, मुझे भी याद नहीं था। उसे १००) देने हैं!

रम्भा बोली--मैं रुपये देता हूं, आप जाकर लेते आवें, क्योंकि रमेश बाबू के घर कल मुण्डन है और मुझे भी बुलावा आया है।

मुन्शी जी--दो रुपये, मैं जाऊं ला दूं। नहीं कल तुम मुझी को दोष देने लग जाओगी।

रम्भा रुपये देते हुए बोली—अम्मा के लिए एक अच्छी सी साड़ी भी लेते आइयेगा, क्योंकि इनको भी बुलाया है।

मुन्शी जी 'बहुत अच्छा' कहते हुए बाहर चले गये।

(५)

दादी के मरने की खबर पाकर सोहन कलकत्ते से आया है। जब क्रिया-कर्म से छुट्टी मिली तो अपने चाचा से बोला—चाचा मैं रुपये देता हूं, मेरे लिये मकान बनवाना है।

मुन्शी गंगाप्रसाद बोले—घर तो है ही, क्या होगा घर बनवाकर? रहते क्यों नही? और तुम्हें कलकत्ते में रहना है कि गाँव में?

सोहन--फिर भी घर की जरूरत तो होती ही है।

मुन्शी गंगाप्रसाद--पहले अपना ब्याह कर ले, फिर घर की फिक्र करना। भैया ने तो हम लोगों को छोड़ ही दिया, तुम्हीं को देखकर हमको भी धीरज है। और क्या बेटा, जब से तुम्हारी माँ मरी, सारा घर चौपट हो गया।

सोहन बोला--जब घर-द्वार हो जाये तो ब्याह भी सोहाता है। मैं सोचता हूं, कल पंडित जी को बुला कर साइत पूछ लूँ, फिर देखा जायगा।

मुन्शी गंगाप्रसाद--भैया से पूछ लो, तुम्हारे बाप हैं। नहीं सुनेंगे तो बुरा मानेंगे कि हमसे नहीं पूछा।

सोहन--इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैंने उनको उसी दिन समझ लिया जिस दिन उन्होंने मुझे घर से बाहर कर दिया और मेरे पीछे दादी को, जो उनकी माँ थी भगा दिया। वह सब कुछ अपनी स्त्री को समझते हैं, तो हमारी भी स्त्री आयेगी हमें उनकी कुछ परवाह नहीं।

(६)

मुन्शी जी के मरने के बाद रम्भा गांव में चली आई और सोहन के चाचा के साथ रहने लगी। इसी बीच में छः महीने बीत गये और सब कुछ हो गया, रोना-धोना, झगड़ा-लड़ाई, सब कुछ।

एक दिन सोहन की चाची अपने पति से बोली--तुम मुझको मारने पर लगे हो जो इसको रख लिया है। फिर क्या

मुझको वह कोई गठरी दे गये हैं ? जब तक वह जिन्दा थे उनको खाया और अब तुम्हें खाने पर लगी है । इनके लिए मेरे घर में रहने की जगह नहीं है । जैसे तुमने इस घर में रखा था, वैसे ही निकाल भी दो । मैं अपने घर इसे नहीं रखना चाहती ।

मुन्शी जी बोले--तू चुप हो ! मैं इसको सोहन के गले बाँधूंगा जो इसका बेटा है । मेरे ऊपर उनका कोई भी हक नहीं है । अभी तो मैंने इसलिए रख लिया है कि गाँव-भर के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे । फिर अभी जवान हैं । कोई कुछ बुरा-भला कर बैठे, तो वह तो मर गये, बदनामी तो हमीं लोगों की होगी । तू तो कुछ समझती है नहीं ।

स्त्री बोली--मैं कुछ नहीं जानती । मुझे रात-दिन की किच-किच नहीं भाती । फिर इनको चाहिए, इनके बच्चों को चाहिए । आज उनके मोहन ने मेरे भान को बहुत पीटा । मेरी आँखों में खून उतर आया । लेकिन जब मैंने उस पर उलाहना दिया तो कहने लगी कि मेरे बच्चे को देखकर जलती क्यों है ! मेरे पास कुछ भी न हो तब भी इनको दूध के कुल्ले करने को दूं ।

मुन्शी जी ने झगड़े का हाल सुन लिया था । चुपके से उठकर सोहन के मकान की राह ली ।

जाकर सोहन से बोले--बेटा, मोहन की मां को अब तुम संभाल कर रखो । मेरा हाल तो तुम से छिपा नहीं है । मैं तुम्हारे बाप का भाई हूं और तुम उनके लड़के हो । तुम्हारे

ऊपर उनका हक भी है। छः महीने हो गये और तुमने एक पैसा भी न दिया और न खोज-खबर ली।

सोहन बोला--पैसा देना, ख़बर लेना मैं पाप समझता हूं।

चाचा--फिर यही जवाब है ? वह तुम्हारी विमाता है। उनके बच्चे तुम्हारे भाई हैं कि नहीं, बहन है कि नहीं ?

सोहन--बाप मर गये हैं, माँ तो जिन्दा है। उसका कर्त्तव्य है बच्चों का पालन करना, मेरा नहीं।

चाचा--तो मुझे इसकी पंचायत करनी होगी कहीं कुछ भला-बुरा हुआ तो मुंह दिखाने योग्य न रहोगे। सोच लो अभी जवान स्त्री है। किसी के दिल का हाल कौन जाने।

सोहन--मैं इसके लिए कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिए अपना ही परिवार सँभालना मुश्किल हो रहा है।

चाचा--तू कर्तव्यहीन है, बेशर्म है। तेरे सामने कुल-मर्यादा की भी कुछ कीमत नहीं। अपने स्वार्थ के ही कारण ऐसा कहता है।

सोहन--मुझे अपने बड़प्पन लेने के पीछे अपने बच्चों की हत्या करने का कोई हक नहीं। जो कुछ भी मेरे घर में है, वह मेरे अकेले का नहीं। उसमें मेरे-बाल बच्चों और स्त्री का भी हिस्सा है। अब मैं वह पहले का सोहन नहीं जिसकी अपनी हर एक चीज अपनी थी। अब मेरे ऊपर भी अपनी स्त्री और बच्चों की जिम्मेदारी है। मोहन की मां को अपने घर में रखने के मानी यह है कि अपने बच्चों के मुंह का कौर

छीन कर मैं अपने बाप के नाम खिला दूँ। और फिर जो बाप अपनी सन्तान के लिए त्याग नहीं कर सकता, उसके लिए बेटे के त्याग करने की कोई जरूरत मैं नहीं समझता। फिर तुम स्त्रियों को अपंग क्यों समझते हो। तुम उनके साथ अन्याय कर रहे हो, क्योंकि उनको अपने पैरों पर खड़ा होने का समय नहीं देते। उनको खुद ही अपने पति की इज्जत का ख़याल होगा, और हम से और तुम से ज्यादा, क्योंकि पति के लिए सबसे प्रिय वस्तु स्त्री है। इस लिए वह भी उसकी इज्जत को अपनी इज्जत समझेगी, उसके कर्तव्य को अपना कर्तव्य समझेगी। अगर हम लोग उसका भार अपने सिर पर ले लेंगे, तो कहने को होगा कि जब तक ज़ीवित था, तब तक तो उसकी थी और मर गया तो दूसरों की हो गई। नेक और स्वाभिमानिनी स्त्री इसको अपमान समझेगी, और यह है भी लज्जा की बात।

चाचा—अभी ऐसा कहते हो; कल को कुछ भला-बुरा हो गया तो पत्ते पर माँस बिछ जायगा। तब बोलने योग्य नहीं रहोगे। अभी बच्चे हो। जरा-सी अँगरेजी पढ़ ली और विलायत के सपने देखने लगे। यह है हिन्दुस्तान!

सोहन—मेरी निगाह में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समाज एक है। उनकी इच्छा हो किसी से ब्याह कर सकती हैं। मैं कभी इसको बुरा नहीं कहूंगा, बल्कि और खुश होऊंगा। यह तो स्त्रियों के साथ अन्याय है कि पुरुष तो बुड्ढा-खुर्राट होकर ब्याह कर सके और विधवा स्त्रियों को जो अभी युवती हैं

समाज सती होने का उपदेश करे। पुरुषों ने अपने अधिकार जमाने के लिए उसके साथ अन्याय किया है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता।

चाचा--तू इतना नीच स्वभाव का हो गया है कि तुझसे बात करना फिजूल है।

सोहन--तो मुझ से कुछ भी मत कहो। जैसा तुम्हें सूझे करो क्योंकि मेरे बाप के साथ तुम्हारा भी कुछ कर्तव्य है, कि सब मेरा ही है। और फिर जो मुझे पन्द्रह साल तक पाला तो मेरे साथ कोई उपकार नहीं किया। उसको अदा करना तुम्हारा फर्ज है। मुझे तो पैदा किया था, न पालते तो सरकार गरदन नापती, लेकिन तुम्हारे लिए वहाँ भी गुंजायश नहीं थी।

चाचा ने जब देखा कि सोहन के सामने चलने वाली नहीं है बल्कि वह उन्हें ही उल्टा फंसाना चाहता है, तो सोहन से बोले--ठीक है बेटा, मैं जाता हूं।

सोहन बोला--मेरे कहने को बुरा न मानियेगा।

चाचा--नहीं बेटा, बुरा क्यों मानने लगा। अभी तक मैं अपने को भाई से अलग समझता था लेकिन अब मालूम हुआ कि भाई हमसे अलग न थे।

सोहन--हाँ, मेरी माँ सगी माँ होती और उन्हें आप अलग कर देते, तो उसके लिए मैं जिम्मेदार भी हो सकता था, लेकिन इनके साथ तो दूसरी बात है।

(७)

रम्भा चुपके से जाकर सोहन की सब बातें सुनती थी। पहले तो उसके जी में आया कि सोहन का मुंह नोच ले कि उसका ही बाप तो उसे ब्याह कर लाया था।

वह उससे पूछना ही चाहती थी—तू मुझे क्यों नहीं रखेगा मेरे बच्चों को क्यों नहीं पालेगा? तेरे बच्चे हैं तो क्या ये पड़े हुए मिले हैं ज़ो उन्हें नहीं पालेगा? फिर सोहन का कहना अपने आप दुहराया कि मेरी माँ होती, तो मैं जिम्मेदार था। उसका कहना ठीक ही है जब बाप बेटे के लिए त्याग नहीं कर सकता, तो बेटा बाप के लिए क्यों जान दे! वह अपने बीवी-बच्चों को छोड़कर अपने बाप के बीवी-बच्चों के लिए क्यों जान दे? इन सब बातों की सत्यता का अनुमान करते-करते उसकी आँखों में पश्चात्ताप के आँसू ढुलक पड़े। जो कुछ भी सोहन ने कहा था, वह उसको निर्विकार सत्य प्रतीत हुआ। उसने फिर सोचा, जब मोहन के पिता घर रुपया भेजने के लिए कहते थे, तब तो मैं अड़ंगा लगा दिया करती थी। यहाँ तक की अपनी माँ के पास भी वह रुपया न भेज पाये। तब इन सब कुकर्मों की गठरी सर पर लादे, मुझको सोहन और अपनी जेठ की कमाई खाने का क्या हक हासिल है? मेरा इस घर में रहकर खाना खैरात और भीख माँगकर खाने के बराबर है। जिस दिन यह लोग चाहें, मुझको धता बता सकते हैं। उसने सोहन या अपने जेठ के घर रोटी तोड़ने को एक उचित हक बनाने का केवल एक साधन पाया।

उसने सोचा कि घर में वह महरी की तरह काम करे और खाना खाए । अगर उस पर भी यह लोग दे दें तो यह उनकी नेक-नीयती है, क्योंकि भाभी जी भी तो काम करके ही खाना खाती हैं । उसको अपने ऊपर घृणा हो आई और उसके हृदय में एक बार आत्महत्या कर डालने तक का विचार आ गया । मैं अभी तक स्वामिनी बनना चाहती थी, लेकिन मैं उसके योग्य नहीं थी, और अपने योग्य ही कहारिन का पद पा रही हूं ।

उसने अपने-आप को औरों के मुकाबिला में आँका और परिणाम यह हुआ कि वह उन आदर्श देवी-देवताओं के सम्मुख एक हत्यारिनी—साबित हुई ।

उसके हृदय की गति ऐसी हो रही थी कि उसका वर्णन करना इस तुच्छ लेखनी की सामर्थ्य के बाहर है । उसकी इच्छा हो रही थी कि चुल्लू भर पानी में डूबकर अपना यह काला मुंह लोगों को न दिखाए !

उसने अपने कुकृत्यों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगी ।

(८)

रम्भा रात-दिन काम करती है, सबसे पहले उठती है और सबके बाद सोती है । जब सारा संसार निद्रा देवी की गोद में होता है, तब वह घर का काम किया करती है ।

रम्भा ने अपनी जेठानी से कहा—भाभी जी, मैं आटा घर में पीस लिया करूंगी । बाहर पिसाई देने की जरूरत नहीं ।

भाभी बोली--रम्भा तू क्या क्या कर लेगी ? तू तो मुझे कुछ करने ही नहीं देती। तेरे ही मारे तो मैं दिन-पर दिन काहिल होती जा रही हूं। उस पर तू सोहन के घर का काम कर आती है। तुझे इतना काम नहीं करना चाहिए।

रम्भा हंसकर बोली--तुम चुप तो रहा करो ज़रा। मैं कोई छुई मुई तो हूं नहीं जो थोड़ा-सा काम करने में मर जाऊंगी।

भाभी हंसकर प्रीति से बोली--मुझे तो तुमने छुई मुई बना दिया है। और रोज़-बरोज बनाती जाती हो। मेरा कैसे बीतेगा ?

रम्भा-बीतने को क्या है। तुम मुझ से बड़ी भी तो बहुत हो, क्या अब भी तुम्हीं काम करती जाओगी। फिर मैं तो हूं ही। मैं कहाँ जाता हूं जो तुमको कष्ट होगा ?

भाभी--रम्भा, तू क्यों इतना काम करती है ? मैं डरती हूं कि कहीं तू बीमार पड़ गई तो मैं मर जाऊंगी, क्योंकि मेरे किये तो अब कुछ होता नहीं।

रम्भा--बीमार क्यों पड़ जाऊंगी ? कोई बूढ़ी थोड़े ही हूं; मेरी इच्छा तो होती है कि तुम्हारे पैर धो-धोकर पीऊँ। मेरे बड़े भाग्य थे जो तुम लोग मुझको मिलीं। मेरा जीवन सफल हो गया। पारस मणि का स्पर्श बड़ी साधना से हो पाता है।

भाभी--तू मुझको क्यों हरदम गाली दिया करती है ?

मैंने तेरे लिए क्या किया है ? तू ने ही बल्कि मुझे मोल ले लिया है ।

रम्भा दोनों हाथ से भाभी का मुंह बन्द करती हुई बोली–मुझ नीच की तारीफों के पुल बाँधती हो ? मैं तुम्हारी दासी भी होने योग्य नहीं हूं । यह तो मैं अपने पूर्व कर्मों का प्रायश्चित्त कर रही हूं ।

भाभी बड़े प्यार से उसे गले लगाकर बोली––तू मेरी धर्म की बेटी है ।

रम्भा भाभी की छाती पर सिर रखकर रोती हुई बोली–आज से मुझे तुम और दादा जी अपनी बेटी समझना ।

भाभी गद्गद् होकर बोली–में तो बेटी ही समझती हूं, पगली !

बाहर से मुन्शी जी ने आकर कहा––अच्छा, रम्भा अब बहू से बेटी हो गई है ?

रम्भा अपनी लाज को छिपाने का विफल प्रयास करती हुई बोली–जी, बहू से बेटी बनने में मैं अधिक सुखी हूं ।

मुन्शी जी हँसकर रो दिये ।

(९)

मुन्शी जी सोहन के घर जाकर बोले––बेटा सोहन, मेरी बात को न टालना । मैं तुम्हें अपने साथ रहने को कहने आया हूं ।

सोहन चाचा के पैर पर गिर कर बोला––मैं पहले से ही सोचता था कि सब लोग साथ-साथ रहें । लेकिन लज्जा-वश

आपके सामने मेरी जबान न खुलती थी। अब मैं तैयार हूं। धन्यवाद है आपको।

उसी दिन से सब लोग एकही घर में हैं। अब भी गाँव में रम्भा की घर-घर चर्चा होती है। एक दूसरे के सामने वह आदर्श रूप में रखी जाती है।

रम्भा अपने लिए नहीं, बल्कि, सब की सेवा के लिए है। रम्भा की सूरत पर-जो सोने और चांदी और मूल्यवान कपड़ों से नहीं चमकती थी--अब रात-दिन की मेहनत, कष्ट और त्याग से कान्ति आ गई है।

वह अपने को सब की चेरी समझ कर सेवा करती है, किन्तु सब के हृदय की रानी है।

—:०:—

श्रीमती उषादेवी मित्रा

आपका जन्म जबलपुर के प्रसिद्ध रईस दत्तवंश में हुआ।

आपकी प्रतिभा वंशगत है। आपके पिता स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र दत्त साहित्य-सेवी थे। उन्होंने उर्दू और अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखी थीं। आपकी मातामही श्रीमती विनोदिनीदेवी, अपने समय की अच्छी कवयित्री थीं।

मित्रा जी के पति श्री क्षितीशचन्द्र मित्र इंजीनियर थे विधवा होने के बाद से आप जबलपुर ही में रहती हैं।

आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आप के मामा ने आपको कलकत्ते ले जाकर संस्कृत और साहित्य की कई वर्षों तक शिक्षा दिलवाई।

आप पिछले कई वर्षों से ही हिन्दी में लिख रही हैं इसी बीच में आपने कोई सवा सौ कहानियां, तीन उपन्यास तथा एक नाटक लिखा है। 'बचन का मोल' तथा 'पिया' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। दो कहानी संग्रह 'मेघमल्लार' तथा 'आंधी के छन्द' भी छपे हैं।

सान्ध्य-तारा

उच्च आशा को निपीड़ित होते देखकर व अपनी योग्यता का अनुचित उपयोग होते देखकर मनुष्य कभी दुर्निवार भी हो उठता है। कदाचित् इस लिए हो या और किसी बात के लिए हो, सुकुमार ने जब नववधू ऊर्मिला को देखा, तो एकदम सारे संसार के प्रति विमुख हो गया।

उस जैसे उच्च शिक्षित के लिए निरक्षरा, अशिक्षिता ऐसी वधू ? आई० सी० एस परीक्षा के लिए वह विलायत जाने वाला था, कालेज की प्रत्येक परीक्षा में वह प्रथम आता गया था और साथ ही साथ उसकी कल्पना में सुगन्धित रङ्गीन पुष्प निखरते गये--खुली हवा सुदृश्य बंगला, मोटर और बगल में बैठी विदुषी पत्नी। तो इन सब के स्थान पर देह-

भरे रूप और हीरे मोती के अलंकार से लदी, अवगुण्ठनवती पत्नी ऊर्मिला को जब उसने पाया, तब वह जीवन ही से विमुख हो बैठा।

और ऊर्मिला? शुभ दृष्टि के समय पाया उसने अपने कल्पित राज्य के कुंवर कन्हैया को। हाँ-उसके नेत्रों ने उसे धोखा दिया। पति की उस उपेक्षित, उदास दृष्टि को उसने प्रेम की पहली झिझक समझा। बालिका नहीं, युवती तो थी ऊर्मिला। फिर इससे क्या? अपनी अपनी समझ तो है और है विश्वास। उसी सरल-हृदय लड़की ने यदि देवता के दान पर विश्वास किया और यदि उसी विश्वास के बल पर कुमारी जीवन की यत्न-सञ्चित सुरभित पुष्पमाला पति पर न्योछावर कर दी हो, तो इसमें हंसने की बात कौन सी है।

इतना सब कुछ तो हो गया, किन्तु फिर उसी अमनोनीत पत्नी को लेकर उसे घर भी लौटना पड़ा। और ऊर्मिला के सामने ऊर्मिला को कम प्यार भी न कर सका।

आठ दिन के बाद ऊर्मिला एक मीठी खुशी लेकर मायके लौट आई। साथिनियों से हँस-हँसकर बातें करने लगी। बड़ी बहन प्रमिला ने खोद-खोदकर सुकुमार की सब बातें सुन लीं। और बहन की खुशी में उस विधवा का सूना जी भी मस्त हो गया। धनवान पिता की लड़की थी वह। विधवा होने के बाद से मायके ही में रहती थी।

उस दिन सवेरे उठकर प्रमिला काम में जुट पड़ी, नया जमाई सुकुमार आने को था। ऊर्मिला को मिलने की खुशी

थी और साथ ही बिच्छेद की व्यथा। सुकुमार दो वर्ष के लिए विलायत जा रहा था। उर्मिला से मिलने वह आ रहा था, दो वर्ष लग जावें, चाहे तीन क्या ठिकाना।

उस रात आकाश में अनेक तारे थे, चाँद में अनेक किरणें थीं, पवन में अपार मादकता थी, और थी ऊर्मिला के मन में पति के बिछुड़ने की अत्यन्त वेदना और सुकुमार के मन में विलायत जाने की अत्यन्त खुशी।

खुशी में वह पुकार उठा—'ऊर्मिला मैं चला जाऊँगा।'

'और आकाश में ये तारे ऐसे ही हँसते रहेंगे।' दुःख में ऊर्मिला कह उठी।

'तीन वर्ष के लिए तुम्हें छोड़कर जाऊंगा।'

'और पवन में ऐसी ही मादकता भरी रहेगी, फूल अपने रंग में मस्त रहेंगे, संसार के काम काज में परिवर्तन न हो पायेगा, पूर्णिमा के चाँद ऐसी ही दीवट जलायेगा, कोकिला ऐसी ही कूकेगी।'

'सो तो ठीक है ऊर्मि।'

'हाँ, ठीक है बिल्कुल ठीक। केवल मेरा हृदय सूना हो जायगा। मरुभूमि-सा तृष्णा से भरा और सूना।'

और जब मैं लौट आऊँगा तब!'

'तब? कौन जाने उतने दिनों में क्या होता है। शायद वह हृदय तब तक उस सूने बन में ओत-प्रोत हो जावे, शायद यौवन की उन्मादता जाती रहे। या तो शायद—शायद ऊर्मिला ही संसार से उठ जावे। दिन भी तो लम्बे है।'

'ऊर्मि न रहेगी ? अनुचित कहती हो तुम।'

'शायद अनुचित हो, और यदि तुम्हारे लौटने के पहले मैं चल बसी तो ?'

'उस वक्त ? हाँ, यह बात विचारने की है। कहो क्या कहती हो ?'

'तब आकाश में बैठी मैं तुम्हे देखा करूंगी।'

एक कौतुक से सुकुमार ने कहा—'और मैं कैसे जानूगा कि तुम देख रही हो ?'

'वही कह रही हूं। वह जो सात तारों का जत्था है, देख रहे हो न ?—हाँ, तो उसी की बाईं ओर मैं टिमटिमाया करूंगी। सन्ध्या-वेला में जब एक भी तारा न जगेगा, तब मैं उससे भी पहले, सन्ध्या के गले में बाँह डाले चमक उठूंगी। पहचान लेना तुम। जिस दिन वह सन्ध्या तारा तुम्हारी खिड़की में झाँके, उस दिन समझ लेना तुम, कि वह ऊर्मिला ही है।'

सुकुमार हंस पड़ा और हंसी हंसी में उसने भी कह दिया—'अच्छा ! और यदि तुम्हारे पहले मैं मर जाऊं, तो आकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र होकर उन्हीं सात तारों के तीन हाथ पीछे दाहिनी ओर चमका करूंगा। जिस दिन वह उज्ज्वल नक्षत्र तुम्हारी खिड़की के सामने आकर झाँके, उस दिन तुम जान लेना कि सुकुमार का अन्त हो गया है।'

बिदाई की बेला निकट होने लगी। पति ने पत्नी से प्रतिज्ञाएं कीं बीसियों—और उस कौतक को देखकर आकाश

के तारे परिहास से हंस पड़े। चाँद के नेत्रों में व्यथा के आँसू भर आए।

(२)

छः मास कटे और फिर बाहर भी। दूसरा वर्ष लग गया। पहले मास ऊर्मिला के निकट लम्बी चिट्ठियाँ, आईं, दूसरे मास कुछ छोटी हुईं, तीसरे मास केवल दो आईं, चौथे मास एक। पाँचवें मास एक छोटी आई। और छठे मास बिलकुल ही बन्द हो गईं।

ऊर्मिला पहले छिपकर रोई, देवी-देवता को मानता किया, पचासों चिट्ठियाँ लिखीं, माता-पिता व्यस्त हुए, तार भेजा, उतर मिल गया--अच्छा है। इसके बाद ऊर्मिला बिलकुल ही शान्त हो गई। सन्ध्या के पूर्व से वह आकाश को देखा करती। और बस। दिन-भर काम करती, दासी-चाकर से हाथ का काम छीन लेती, देख-सुनकर प्रमिला बहन के लिए व्यथा के आँसू बहाती।

अढाई वर्ष निकल गये। सुकुमार ने घर आने का नाम न लिया। उसका साथी देश लौट आया। ऊर्मिला के पिता ने उससे जमाई की बात पूछी और सब कुछ सुनकर उसका मुँह गम्भीर हो गया।

'जमाई की खबर नहीं मिलती, इधर तुम भी चुपचाप बैठे हो उर्मि की माँ ने पति से कहा।

जाते जाते ऊर्मिला रुकी। कान लगाकर सुनने लगी।

पिता ने झुंझला कर कहा--'तो क्या करूं? उसके

लिए प्राण दे दूं ? सुन न लिया, उसका मित्र क्या कह रहा था ?'

'मर्द है कभी कुछ भूल-चूक हो ही जाती है। लड़की अपनी है जमाई के अच्छे-भले की खबर लेना हमें उचित है।

वही उचित तो करता जा रहा हूं गृहिणी। हर महीने तारों में उसके लिए कितने रुपये खर्च हो रहे हैं, कुछ खबर भी रखती हो ?,

'तार देते हो ? वह क्या जवाब देता है।'

पिता के विषाद-खिन्न स्वर की आवाज आई--'यदि जवाब ही देता, तो दुःख हलका हो जाता न।'

'जवाब नहीं देता यह कैसी बात है।'

'वही तो बात है। एक का भी जवाब नहीं दिया। बाप के मरने से धन का वह मालिक बन गया है। वही अकेला सब कुछ है। बूढ़ा-सयाना कोई है नहीं मां बेचारी क्या करे।'

'फिर अब क्या होगा ?'

'होगा क्या ! समझो कि वह मर गया, बस।'

मर गया !--ऊर्मिला एकदम सिहर उठी--मर गया है वह ! उसका पति मर जावे और तब भी वह दुनिया में जीवित बैठी रहे ? तो किस आशा से, किस के लिए ?

ऊर्मिला से और सुना न गया। वह भागी-भागी छत पर चली आई। उसका जी धक् धक् करने लगा। वह आँखें फाड़-फाड़ कर आकाश के प्रति देखने लगी। कहाँ ? हाँ वह

है तो सात तारों का जत्था। और उसकी दाहिनी ओर! ऊर्मिला ने डरतें-डरते देखा और फिर देखा——नहीं नहीं कुछ नहीं है। वह बार बार कहने लगी–वे हैं और, दृढ़ स्वर से कहने लगी——ऊर्मिला——वे हैं और उसी के हो कर हैं। मरना कैसा? यदि वह दुनिया में न रहते, तो तारा बनकर अपनी ऊर्मि को देखने न आते? वे भला झूठ कह सकते हैं? और वें बातें? ऊर्मिला की चिन्ता लौट पड़ी——हाँ, वे बातें, जो उसकी सहेलियाँ कहा करती हैं और अभी अभी जो वह पिता के मुंह से सुनकर आ रही है, वही शराब पीना, दूसरा विवाह करना आदि? सब झूठ हैं, बिलकुल झूठ। वह इन बातों पर विश्वास नहीं कर सकती है। वह तो उसके हैं, फिर दूसरी के कैसे हो सकेंगे? वैसी प्रेम की व्याकुलता, वैसे आदर-सने शब्द, वैसी चाह, क्या यह सब मौखिक हो सकता है।

ऊर्मिला ने बार बार मन को समझाया।——वे सुविशुद्ध. हैं, वैसे ही रहे आवेंगे, और एक दिन आवेंगे, उन्हें एक दिन आना ही पड़ेगा और यदि।——वह चौंककर आकाश के प्रति निहारने लगी, कहाँ गये वे सात तारे?——वह तो हैं, और उन तारों के दाहिनी ओर? अरे, यह क्या?——क्या—— क्या? दूसरे क्षण ऊर्मिला अपनी भूल पर हँसी, मुसकराई कहाँ? वह तो कुछ भी नहीं है। कैसी भूल हो गई। विज्ञ भाव से विचारने लगी——वह भूल तो मनुष्यमात्र से होती है, इस से क्या।

(३)

'ऊर्मि ऊर्मि' पुकारती हुई प्रमिला छत पर पहुँच गई। ऊर्मिला तभी छत पर आई थी और आकाश की ओर देख भी न पाई थी--'तू सन्ध्या होते ही क्या देखा करती है बहन ?'

'मैं ? कुछ तो नहीं दीदी।' यथा स्वभाव गम्भीर बन कर कह दिया ऊर्मिला ने।

'कुछ नहीं ? किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। कहो क्या देखती हो ? मुझ से छिपाना व्यर्थ है।'

'कुछ नहीं दीदी।'

'शायद न हो। शायद आकाश की ओर मुंह किये तू उसकी बात सोचती हो।'

ऊर्मिला चुप रही।

प्रमिला के नेत्र भर आये--'बहन, तू घबराना नहीं। यदि वह निर्मोही न भी आवें तो तुझे जीवन-निर्वाह की कमी कभी न होगी। बाबू जी कहते हैं, सब सम्पत्ति तेरे नाम लिखेंगे।'

ऊर्मिला काँप उठी--'ऐसा मत कहो दीदी। वे आवेंगे, मुझे छोड़कर वे कब तक रह सकते हैं।'

इस सरल, दृढ़ विश्वास को देखकर, जो कुछ प्रमिला करना चाहती थी, कह न सकी। चुप हो रही।

'वे आवेंगे दीदी।' उसने जोर के साथ फिर कहा।

'हाँ बहन, आवेगा।' क्षीण स्वर से प्रमिला ने कहा। यद्यपि प्रमिला जानती थी कि यदि सुकुमार आवेगा भी, तो ऊर्मिला का होकर न रह सकेगा। फिर भी उसे कहना पड़ा— वह आवेगा।

माता ने पुकारा। प्रमिला नीचे उतर गई। ऊर्मिला अकेली बैठी आकाश निहारने लगी। सात तारों की दाहिनी ओर ? हां-हाँ वह जुगनू सा कुछ टिमटिमा रहा है न ? उसका जी धक्-धक् करने लगा। डरते डरते उसने देखा और अच्छी तरह से देखा। जी शान्त हुआ, नहीं कुछ नहीं है। वे जीवित हैं और अच्छे हैं। किन्तु उन्हें देखे बिना मैं कब तक जीऊं ? तो मैं ही क्यों न तारा बनी-बनी उन्हें देखा करूं ? परन्तु वह तो केवल रात में देखने पाऊंगी और दिन भर ? हानि क्या है, उतना भी क्या कम है ? दिन-भर मैं सूरज की डेहरी में पड़ी सोया करूँगी, सूर्य-किरण से अपने अलंकारों को रंगा करूँगी, और वर्षा ऋतु में चातक के तृष्णार्त कण्ठ में बूंद बूंद पानी बन चू पड़ूंगी। जब सान्ध्यदीप न जल पायेगा, मन्दिर में आरती जब न हो पायेगी, तब मैं सात तारों की बाईं ओर अपने देवता की आरती कर लिया करूँगी।

तो ऐसी ही आशा, आश्वास के भीतर से जब तीन लम्बे वर्ष कट गये और चौथा बर्ष आरम्भ हो गया, तब ऊर्मिला निराश तो नहीं, किन्तु अधीर हो गई पति को देखने के लिए दिन-रात वह चुप बैठी रहा करती। न भोजन करती, न नींद

भर सोती। डाक्टर-वैद्यों से घर भर गया। राजयक्ष्मा रोग बतलाया डाक्टरों नें। घर के लोग उदास हो गये। उसे लेकर माता-पिता पहाड़ पर चले गये। किन्तु देखकर सब विस्मित हुए कि बीमार पड़ने के बाद ऊर्मिला असम्भव प्रसन्न सी लगने लगी। वह पड़ी-पड़ी बहन से हँसी की बातें करती। माता पिता से हंसकर बोलती।

उस दिन आकाश मेघ मुक्त था। पूर्णिमा का चाँद पृथ्वी को दुग्ध फेनिल कर रहा था। रात के बारह बज चुके थे। ऊर्मिला ने धीरे से पुकारा—'दीदी।'

प्रमिला उसके पास पड़ी थी, उठकर बैठ गई—'कहो बहन।'

'आज भी पूर्णिमा है न?'

'हाँ।'

'आज भी अनेक तारे आकाश में जाग रहे हैं न?

'हाँ ऊर्मि।'

'और आज भी तमाम खुशी पृथ्वी-आकाश में भरी है न?'

विस्मय से प्रमिला ने कहा—'क्या कह रही है ऊर्मि?'

'तुम उसे नहीं समझोगी दीदी। उस दिन भी ऐसी ही खुशी अखिल ब्रह्माण्ड में भरी थी।'

'किस दिन री पगली?'

'उसी विच्छेद के दिन दीदी। जिस दिन वह गये थे, उस दिन भी ऐसी ही खुशी आकाश में थी। वह था विच्छेद

का दिन और आज है मिलन का दिन।' मानो वह अपने आपको सुनाकर बोली।

'मिलन का दिन!' प्रमिला सिहरी।

'रोती क्यों हो? उन सात तारों के पास मैं एक सान्ध्य-तारा बनी उन्हें देखा करूँगी।'

'आज तू क्या बक रही है ऊर्मि? तुझे हो क्या गया है?'

वह मुसकराने लगी।

'ज्वर आज नहीं है, शान्त होकर सो रहो।'

'सो रहूं? उसकी त्यारी कर रही हूं न। खिड़की खोल दो जरा अच्छी तरह से। ठण्डक कहाँ है। हाँ, अब ठीक हुआ। तुम दीदी कभी मुझे देख लिया करो, सात तारों की बाईं ओर तुम्हारी ऊर्मि रहा करेगी।'

ऊर्मि-ऊर्मि, क्या कहती है, सो जा धीरे।'

'चुप, चुप,।' मुसकरा-मुसकरा बोली ऊर्मिला।

'ऊर्मि, ऊर्मि!'

'नींद आ रही है।'

'एक बात तो और कह दो ऊर्मि?'

कोई बोला नहीं। प्रमिला का आर्त चीत्कार कमरे के कोने कोने में माथा पीटता फिरने लगा।

(४)

लन्दन शहर के गिर्जे की घड़ी में बारह की घंटी टनटना उठी। सुकुमार पलंग पर उठ बैठा। खिड़की उसने एक

आतुरता से खोली। विस्मित तरुणी ने अलसाये हुए स्वर से कहा—'यह क्या करते हो। ऐसी सर्दी में खिड़की क्यों खोल दी?'

सुकुमार ने कुछ उत्तर न दिया। देर तक अपेक्षा के बाद भी जब सुकुमार वहाँ से न हटा, तो एमिली उठकर निकट गईं। उसे हिलाकर कहा—'यहाँ क्या कर रहे हो! कोई स्वप्न तो नहीं देखा?

'स्वप्न! नहीं एमिली, ऊर्मिला तो सामने खड़ी है, फिर इसे स्वप्न कैसे कहूं?'

एमिली मुसकराईं—'हाँ-हाँ, तुमने स्वप्न ही देखा है। चलो पलंग पर सो रहो।'

'मैं? किन्तु वह मुझे देखने के लिए ऐसी सर्दी में सारी सारी रात खड़ी रहेगी और मैं आराम से सोता रहूंगा! उसके न हटने से मैं सोऊं कैसे?'

'किस की बात कह रहे हो यहाँ तो कोई नहीं है।'

'नहीं है? देखती नहीं, सात तारों के बाँई ओर वह बैठी मुझे देख रही है।'

'वह कौन?'—अत्यन्त विस्मय से एमिली ने पूछा।

'मेरी ऊर्मिला।'

'ऊर्मिला किस का नाम है?'

'मेरी पत्नी का।'

'तुम विवाहित हो?'—क्रोध से एमिली हट कर खड़ी हो गईं।

'हाँ सो तो मैं पहले ही कह चुका था।'

कुछ सोच कर एमिली बोली—'ठीक है, किन्तु साथ ही तुम ने कहा था, उसे तलाक दे चुके हो।'

सो भी ठीक है एमिली। मैंने तब सोचा था कि उसे मैं त्याग कर चुका हूं, किन्तु अब देखता हूं, उसने तो मुझे त्याग किया नहीं।'

'प्रतारक।' कहा एमिली ने और क्रोध, क्षोभ से कांपती निकल कर चली गई।

उस दिन जहाज के बन्दर पर भीड़ में दबता हुआ सुकुमार जहाज की ओर बढ़ा चला जा रहा था। वह देश लौट रहा था। एमिली से उसका तलाक हो चुका था।

सन्ध्या धूसर-वसन सँभाले पृथ्वी पर उतर पड़ी। बन्दर पर एक स्वदेशी युवक का हाथ थामे एमिली खड़ी थी। किन्तु सुकुमार की दृष्टि उस ओर नहीं थी। वह आकाश की ओर मुंह किये चल रहा था। यात्री जहाज पर बैठ गये।

'मिस्टर खरे इसी जहाज से भारत लौट रहे हैं न?' साथी साहब ने एमिली से पूछा। अवज्ञा के साथ एमिली ने उत्तर दिया—'हाँ। भारतवासी जैसे झूठे होते हैं, वैसे ही विकृत मस्तिष्क।'

'ऐसा!' साहब एमिली की बातों से विस्मय के साथ ही साथ आमोद भी अनुभव कर रहा था।

एमिली ने कहा—'हाँ महाशय, एक तारे को वह अपनी पत्नी बतलाता था।

तारे को ?' वह दोनों जोर से हँसे । और उसी हँसी में जहाज छूटने की गम्भीर घण्टा-ध्वनि मिल कर एकाकार हो रही थी। जहाज भागा चला जा रहा था। एमिली दूरबीन लगाये उस विकृत मस्तिष्क भारतवासी को देख रही थी और सुकुमार एकाग्र दृष्टि से आकाश में निहार रहा था, सात तारों का जत्था और उस जत्थे की बाईं ओर उज्ज्वल ज्योतिर्मय तारा जहाज के साथ साथ तारा भी भागा भागा चला जा रहा था। उधर आकाश में तारों की फुलवारी, समुद्र के नीले जल में तारों की छाया और बीच में पलक-हीन नेत्रों से बैठा रह गया सुकुमार।

—o—

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा बी० ए०, एल एल० बी० लाहौर के एक युवक कहानीकार हैं। आप सिविल सेक्रेटेरियट में काम करते हैं। कहानियां आपकी चांद, सरस्वती, माधुरी आदि पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं। आपकी कहानियों का संग्रह 'पंखुड़ियां' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इधर आपने नाटक भी लिखने आरम्भ किए हैं। आपका एक छोटा सा नाटक 'दुविधा' नाम से प्रकाशित भी हुआ है।

श्री पृथ्वीनाथ की कहानियों का सब से बड़ा गुण 'कथानक का गठन' है। प्लाट आप पहले अपने मस्तिष्क में बना लेते हैं और फिर उसे कहानी की कला को सामने रख कर लिख डालते हैं। सामाजिक कहानियां, जिन में कोई न कोई उद्देश्य छिपा होता है, लिखने में आपको कुशलता प्राप्त है। चरित्र-चित्रण भी आपका सुन्दर होता है। 'रज्जू का सौदा' आपकी एक मर्म-स्पर्शी रचना है।

रज्जू का सौदा

रज्जू ने बच्चे को गोद में उठा लिया। झोपड़ी से बाहर निकल बाजार की ओर चल पड़ा। बच्चे के अनिश्चित परंतु आशामय भविष्य के लिए आज वह ममता जैसी मधुर तथा बलवती वस्तु को लात मारने जा रहा था। परन्तु वह बेवस था। उसके मुंह में दूध की बूंद गए दूसरा दिन।

कुछ ही क्षणों में वह बाजार जा पहुंचा। वहां विशेष चहल पहल न थी। फटे तथा मैले कपड़े पहने हुए वह बाजार के गर्द-गुबार का अंग बन गया। किसी ने उसकी ओर देखा तक नहीं। उसे एक दुकान बन्द दिखाई दी। तख्ता काफी चौड़ा था। उसने अपने चारों ओर देखा। बच्चे को वहाँ लिटा कर चुपके से आगे चल दिया। बालक कुछ देर मौन पड़ा रहा। आखिर उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें इधर-उधर

दौड़ाई। शायद भांप गया। ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा। लोगों का समूह इकट्ठा हो गया।

'किस का बच्चा है? कितना सुन्दर है!' सब एक दूसरे से कह रहे थे। परन्तु उसे अपनाने वाला वहां कोई न था।

एकाएक भीड़ के पास नीली मोटर आकर ठहर गई। मोटर से सिर निकाल कर एक व्यक्ति ने पास वाले आदमी से पूछा—'क्यों जी, क्या मामला है?'

उसने अदब से जवाब दिया,—'जनाब, एक लावारिस बच्चा पड़ा है। कोई एक साल का होगा।'

मोटर-स्वामी को कुतूहल सा हुआ। मोटर से उतर कर वे बच्चे की ओर देखने लगे। बच्चा बहुत सुन्दर था। वे उस पर मुग्ध से हो गये। दो मिनट तक एकटक उसकी ओर देखते रहकर वे आगे बढ़े और उसे गोद में ले लिया। उन्होंने कहा—मैं इसके माँ-बाप का पता लगाने की कोशिश करूँगा, किसी ने कोई आपत्ति न की। शहर के नामी वकील तथा म्यूनिसिपल कमिश्नर बाबू राधानाथ को कौन नहीं जानता था।

वे बच्चे को लिये मोटर में जा बैठे। मोटर हवा हो गई।

(२)

बाबू राधानाथ ने दो चार दिन बच्चे के माता पिता का पता लगाने की कोशिश की। परन्तु वह असफल रहे। उनके अपने कोई सन्तान न थी, इसलिये उन्होंने बच्चे को स्वयं पालने का निश्चय किया।

एक विलायती तथा एक हिन्दुस्तानी धाय और दो नौकरों की देख-रेख में बालक का पालन-पोषण होने लगा। शाम सबेरे गाड़ी में बैठकर बच्चे को हवा खिलाई जाने लगी। दोपहर के आमोद के लिये दो-तीन प्रकार के झूले डलवा दिये गये थे।

रज्जू यह सब कुछ देखता और प्रसन्न होता था। यही वह चाहता था। परन्तु कभी उसके हृदय में प्रेम की अग्नि धधक उठती थी। बच्चे को छाती से चिपटाने के लिए मन बेचैन हो जाता था। जी में आता था कि राधानाथ से साफ साफ कह दे और अपना लाल वापस माँग ले। एक दो बार उसकी आतुरता उसे खींचकर बाबू राधानाथ के कमरे तक ले भी गई, परन्तु अन्दर जाने का साहस न हुआ। लौट आता और सारा उत्साह भंग हो जाता।

इस भांति बाबू राधानाथ के बंगले के इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहकर रज्जू ने छः वर्ष बिता दिए।

(३)

एक दिन जब रज्जू वहां पहुंचा तो कोठी के द्वार बन्द पाए। चकित हो गया। इधर-उधर देखा। दरवाजे के बाहर एक चौकीदार हाथ में लट्ठ लिए बैठा था। रज्जू उसके पास जा पहुंचा। चौकीदार ने नवागन्तुक की ओर बेपरवाही से देखा। जेब से डिबिया निकाल चूना और तमाखू मलने लगा। चौकीदार को इस भांति अकड़ा देखकर रज्जू ने उसे फुसलाना चाहा। उसने कहा—'जय राम जी की भाई साहब।'

चौकीदार पिघल गया। नर्मी से जवाब दिया--'जय राम जी की।'

'आज द्वार क्यों बन्द है भैया ?' रज्जू ने प्रश्न किया।

तमाखू और चूना मुंह में रखते हुए चौकीदार ने कहा-'अरे क्या पूछते हो ? अमीरों के चोंचले हैं। सात वर्ष का लड़का और उसे पढ़ाने के लिए विलायत ले गये हैं। देश में मानो स्कूलों का अकाल पड़ गया है।'

रज्जू को मानों पैनी कटार सी चुभ गई। बीच में ही बोल उठा--'विलायत ? उसे विलायत ले गये ?' चौकीदार अपनी उमंग में था। रज्जू की हैरानी की ओर उसका ध्यान नहीं गया। इतने में रज्जू संभल गया। चौकीदार अभी तक अपनी ही हाँके जा रहा था।

रज्जू ने पूछा--'अच्छा, कौन कौन गया है ?'

'बाबू, बीबी और रत्नू। बाबू और बीबी तो शीघ्र ही लौट आयेंगे। रत्नू वहीं पढ़ेगा।'

कुछ ठहर कर उसने फिर कहा--'भैया अपने पेट का बच्चा होता तो फेकने न जाते।'

रज्जू ने कुछ कहना चाहा, परन्तु चौकीदार के अन्तिम वाक्य ने उसके हृदय में उथल-पुथल मचा दी। उसका गला भर आया और शब्द बाहर न निकल सके। दो एक क्षण एकटक चौकीदार की ओर देखता रहा। फिर आह भर कर लौट पड़ा।

रज्जू घर पहुंचा बिना दिया जलाए ही गुदड़ी में घुस

गया टूटी हुई छत से छन कर चन्द्रमा की एक दो किरणें उस अंधेरी कुटिया में प्रवेश करने का विफल प्रयास कर रही थीं। रज्जू ने विचित्र मुस्कराहट से उनकी ओर देखा, और व्यग्र हो उधर से मुह मोड़ कर गुदड़ी में छिपा लिया। जिसका मन अन्धकारमय हो उसे अन्धकार ही प्रिय होता है। उसे एक छोटी सी किरण भी बेचैन कर सकती है।

रज्जू की आँखों के सामने उसके दो लड़के मर गए। एक लड़की मरी। चार वर्ष तक दुःखी तथा यंत्रणाएँ सह चुकने के बाद पत्नी की भी इह-लीला समाप्त हो गई। उसने भी असीम दुःख सहे। इधर कई दिनों से एक बेर भी पेट भर कर न खाया था। परन्तु जो पीड़ा उसे अब हो रही थी उसका अनुभव उसने आज तक कभी नहीं किया था। एक वस्तु उसकी होती हुई भी उसकी नहीं थी। उसकी यह स्थिति बिलकुल नई तथा अत्यन्त करुणाजनक थी।

(४)

रज्जू सुबह से प्रतीक्षा में बैठा था। उसका पुत्र आज चौदह वर्ष के बाद विलायत से लौटा था। परन्तु कितना उसका दुर्भाग्य कि जबतक लड़का सामकी सैर को न निकले, रज्जू को उसके दर्शन न हो सकते थे। उसकी आँखें एकटक लगी थीं हृदय धड़क रहा था, कल्पना इधर उधर उसे उडा रही थी। उस दिन आकाश का रंग रज्जू को अत्यन्त प्रिय मालूम हो रहा था।

सहसा धूल का एक बवंडर-सा उड़ाती हुई एक मोटर

रज़्जू के निकट आकर ठहर गई। रज्जू घबड़ाना सा उठ खड़ा हुआ, देखा, शोफर के सिवा मोटर में कोई न था। पास चला गया। डरते डरते शोफर से पूछा––'भैया मोटर किस के लिए आई है ?'

शोफर रज्जू को जानता था। जब से नौकर हुआ था रज्जू को कोठी के इर्द-गिर्द कहीं न कहीं उसने बैठे हुए अनेक बार देखा था। दो चार बार बातचीत भी हुई थी। इसलिए उसने बिना कुतहल के जवाब दिया–'छोटे साहब सैर को जा रहे हैं,।'

'कब?'––रज्जू का गला भर आया।

'अभी, थोड़ी देर में'––शोफर ने मोटर के हुड को नीचे गिराते हुए जवाब दिया।

रज्जू दरवाजे के पास मकान की ओर टकटकी बाँधे खड़ा हो गया। दस मिनट भी न गुजरे थे कि एक सुघड़ युवक की मूर्ति प्रकट हुई। गोरा रंग बड़ी बड़ी आँखें, मुसकराते हुए ओंठ, विलायती सिला हुआ बढ़िया कोटिंग का सूट, सिल्क हैट सिल्क टाई और बल्लौर की भांति चमकता हुआ जूता। रज्जू भौंचक्का सा रह गया। जहाँ खड़ा था कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। यही छोटे साहब थे।

आखिर रज्जू ने अपने आप को ज़रा सँभाला; कपड़े ठीक ठाक कर मोटर की ओर लपकते हुए रत्नू के सम्मुख जाकर खड़ा हुआ।

'क्या चाहते हो ?' पुत्र ने पिता से पूछा।

रज्जू की ज़बान पर मुहर लग गई। मूर्खों की भाँति टुकर टुकर देखता रहा ।

कोई भिखारी है, युवक ने सोचा। जेब में हाथ डाल, एक आना रज्जू की ओर फेंक मोटर में जा सवार हुआ। मोटर एक क्षण में ही भाग चली।

रज्जू ने मोटर की ओर देखा, और पाँव के पास पड़े हुए निकल के टुकड़े की ओर देखने लगा, उसकी आँखों से एक दो आँसू टपके और फिर रुक गये ।

अपने किए सौदे पर रज्जू किस को दोष दे सकता था।

—o—

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री 'अश्क' का जन्मस्थान जालन्धर है। वहां से बी० ए० पास करके आप १९३१ में लाहौर आ गए। तब चुंकि आप उर्दू में लिखा करते थे, इसलिए लाहौर में आकर पहले पहले आप ने कुछ उर्दू पत्रों के सम्पादक विभाग में काम किया। फिर १९३४ में आप ने कानून ले लिया पर एल एल० बी० करने पर भी, आप अपनी पत्नी की लम्बी बीमारी और मृत्यु के कारण, प्रेक्टिस न कर सके। आजकल आप स्वतंत्र रूप से साहित्य-सेवा कर रहे हैं।

कहानी लिखना आपने बहुत पहले आरम्भ कर दिया था। कालेज के दिनों में आपकी उर्दू-कहानियों का एक संग्रह 'नौ रत्न' के नाम से प्रकाशित हुआ। १९३३ में आपकी कहानियों का दूसरा संग्रह निकला जिसका परिचय स्व० प्रेमचन्द ने लिखा। उनके संसर्ग में आने के बाद ही आप हिन्दी में लिखने लगे और आपकी पहली हिन्दी कहानी भी स्व० प्रेमचन्द के मासिक पत्र 'हंस' में ही निकली।

आपकी शैली के सम्बन्ध में आपके कहानी संग्रह का परिचय लिखते हुए स्व० प्रेमचन्द ने लिखा है--

"साहित्य के दूसरे अङ्गों की भांति कहानी की सफलता भी उसके प्रभाव में है और प्रभाव रचना में गुणों के बाहुल्य का नाम है। जब मनोरंजकता अपनी पराकाष्ठा को पहुंच जाती है तो वह प्रभाव बन जाती है। मैं 'अश्क' जी की कहानियों को रुचि तथा शौक से पढ़ता रहा हूं और मेरे दिल पर सदैव उनका प्रभाव पड़ा है।"

और यह है भी सच। भावों की मौलिकता, कथानक की मनो-रंजकता शैली की मार्मिकता तथा गहरी अनुभूति के कारण 'अश्क' जी सदैव अपने पाठकों पर एक गहरा प्रभाव छोड़ने में सफल होते हैं।

गल्पकार होने के साथ साथ आप एक सफल नाटककार तथा कोमल कवि भी हैं। आपका एक सुन्दर नाटक 'जय-पराजय' हिन्दी में निकला है। एकांकी नाटक भी आपने कई लिखे हैं, जिनका जनता में अच्छा सम्मान हुआ है। आप उपन्यासकार भी हैं।

आजकल आप प्रयाग में रहते हैं।

उदयशंकर भट्ट

—:o:—

पाषाण

उस समय अपनी मृत-पत्नी के सिरहाने खड़े-खड़े कैलास की संगदिली की सभी घटनायें एक एक करके मेरी आँखों के सामने फिर गईं।

× × ×

सायंकाल का समय था। छाया को बीमार पड़े कोई एक वर्ष बीता होगा। मैं नीचे आँगन में बैठा उसके लिए औषधि तैयार कर रहा था कि वह ऊपर से उतरी और कुछ उदास सी तेजी के साथ मेरे सामने से गुजर कर अपने कमरे में चली गई।

मैंने औषधि वहीं छोड़ दी और भागा भागा उसके कमरे में पहुँचा। बिस्तर में मुँह छिपाए वह रो रही थी।

चुपचाप खड़ा मैं कुछ क्षण उसे देखता रहा। मेरा दिल धड़क रहा था और मन में सन्देह था कि हो-न-हो किसी ने इसे अवश्य ही कोई-न-कोई चुभती बात कह दी है। कुछ ही क्षण पहले तो वह ऊपर गई थी कि जरा हवा में लेटें। नीचे बहुत गर्मी थी। मैंने ही कहा था--जरा ऊपर चली जाओ, हवा में लेटो। और वह इतनी जल्दी उतर आई थी। आगे बढ़कर मैंने उसके कन्धे को छुआ। वह उसी तरह लेटी रही।

मैंने कहा--छाया।

उसने करवट लेकर मेरी ओर देखा। ज्वर के वेग से उसका चेहरा लाल हो रहा था आँखें भरी हुई थीं।

--क्या बात है ?

एक निमिष वह मेरी ओर देखती रही और फिर उसने कहा--मुझे अस्पताल में दाखिल करा दो ! और आँसू अनायास उसकी आँखों से बहने लगे।

मैं चारपाई पर बैठ गया। उसका सिर अपनी गोद में लेकर मैंने उसकी आँखें पोंछी। पूछा--कहो तो सही, क्या बात है ?

उसने सिसकते हुए कहा--मुझे दिक हो गया है। घर में रहूँगी तो दूसरों की जान जाने का भी डर रहेगा। अस्पताल में दाखिल करा दोगे तो जीवन के जो एक दो दिन शेष हैं, आराम से कट जायेंगे। फिर तुम्हें भी कुछ देर आराम मिलेगा और घर वालों को भी कष्ट न होगा।

मेरा गला सूखा जा रहा था। मैंने कहा--छाया तुम मेरे कष्ट का खयाल न करो। मेरी तो जान लेकर भी तुम्हें कोई निरोग कर दे तो देने में संकोच न करूं। यह तो बताओ, यह कहा किसने कि तुम्हें दिक हो गया है।

--कहेगा कौन ? दिखाई जो देता है, भाग्य में जो जो सहना बदा है, सहना पड़ेगा, जो जो सुनना है, सुनना पड़ेगा। मैं तो यह सोचती हूं कि यदि परमात्मा को उठाना ही था तो यों ही उठा लेता। तड़पने और तड़पाने के लिए यह रोग क्यों लगा दिया ?

मेरा गला भर आया। मैंने कहा--छाया ! मैं मिन्नत करता हूं। तुम बताओ तो सही, तुम से यह बात कही किसने ?

--तुम शोर मचाओगे। मैं कहूं क्या ?

--मैं जरा भी नहीं बोलूंगा। तुम कहो तो सही।

वह बोली--यहाँ दम घुट रहा था। तुमनें अनुरोध किया तब ऊपर चली गई। गलती से अपने बिस्तर के बदले कैलाश के बिस्तर पर लेट गई। उसने आते ही कहा--'तुम्हें आप तो मरना है, दूसरों को साथ क्यों लिए मरती हो ?' और न जाने उसने क्या क्या कहा। तुम्हीं बताओ, क्या मैंने जान बूझकर ऐसा किया ? मुझ से तो जहाँ तक होता है, स्वयं ही इस बात का खयाल रखती हूं, किसी को छूती तक नहीं, अपने बच्चे तक को गोद में नहीं लेती।

वह जोर जोर से रोने लगी थी और मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। वहीं बैठा मैं अपनी बेबसी पर

विचार करने लगा। जी में आता था, जाकर उसका और अपना सिर फोड़ लूं इतना शोर मचाउं कि सबके होश ठिकाने आ जाएं। यह सब माता-पिता की शिक्षा का ही तो परिश्रम था, जो मुझे उसके पास जाने से रोकते थे, वे मेरे भाई को क्यों न रोकेंगे। उस समय मुझे मां की पाठ-पूजा, नेम-धर्म, पाप-पुण्य की सब बातें निकम्मी और निरर्थक प्रतीत हुईं और मैंने निश्चय कर लिया कि मैं छाया को लाहौर ले जाऊंगा। जहां कैलाश जैसे पाषाण बसते हों, वहां बीमार को रखना उसे जीते जी मृत्यु के मुंह में ढकेलना है।

उस रात को मुझे नींद नहीं आई। जिस बात से मैं डरता था, अन्त में वही हुई। चाहता था कोई उसका दिल न तोड़े इसे अपने जीवन से निराश न करे और यह कैलाश!— इसने वही बात कह दी——तुम्हें तो मरना है, हमें भी साथ क्यों लिए मरती हो। कितने कटु शब्द थे? इनका एक एक अक्षर मेरे हृदय में चुभा जा रहा था। उस समय अपनी बेबसी पर मेरे आँसू आ गए और मैंने चादर के आंचल से उन्हें पोंछ डाला। किन्तु दूसरे ही क्षण दुर्बलता का यह भाव दूर हो गया और दृढ़ता ने उसका स्थान ले लिया। मैंने निश्चय कर लिया, प्रातः छाया को लेकर लाहौर चला जाऊंगा।

और अभी तीन ही बजे होंगे कि मैंने मां को जगाया और कहा——मैं लाहौर जा रहा हूं।

वें आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगीं।

मैंने कहा उठकर थोड़ा-बहुत सामान तयार करा दो।

उन्होंने मेरे बिखरे हुए बालों और उड़े हुए चेहरे की ओर देखा और कहा---पागल हो गये हो जग्गू ?

--हाँ

वे चुप हो गईं।

और फिर जल्दी जल्दी तैयारी करके मैं तांगा ले आया और जब हम चलने लगे तब मैंने बिस्तर पर सोते हुए बच्चे को उठाया।

माँ रो पड़ीं--इसे भी क्यों मुझ से छीन रहे हो ?

मैंने बच्चे को वहीं छोड़ दिया। माँ के पाँव छुए और छाया को लेकर तैयार हो गया। मां ने चलते समय मेरे हाथ में दस रुपये के दो नोट रख दिये और कहा---आवश्यकता होने पर लिखना। उन्होंने हमें रुद्ध कंठ से आशीश भी दी, किन्तु कैलाश जागता हुआ भी नीचे न उतरा। हां, इतना अवश्य किया कि जब बच्चा जागकर रोने लगा तब उसने वहीं ऊपर लेटे लेटे उसे डांट दिया। अन्दर की सांस अन्दर और बाहर की बाहर और बच्चा सहमकर चुप हो गया।

उस समय मेरे दिल की गहराइयों से बरबस एक दीर्घ निःश्वास निकल गया और मैं कुछ उन्माद की सी अवस्था में सीढ़ियां उतर आया।

× × ×

फिर सात महीने बाद एक रात थी--दुःख की तरह काली, मुसीबत की तरह भयानक! एक बजा होगा। मैंने

अपने घर का दरवाजा खटखटाया और कोई आवाज़ न आने पर एक लम्बी सांस लेकर अपने समीप ही कुर्सी पर लेटी हुई दुर्बल और कृशकाय छाया पर नज़र डाली। उन दोनों कुलियों को भी देखा जो स्टेशन से उसे उठाकर लाए थे। मुहल्ले के लैम्प की धीमी रोशनी में यह सब कुछ स्वप्न-का-सा दिखाई देता था।

मैंने दोबारा आवाज़ दी और कुंड़ी खटखटाई। मकान की मुंडेर पर बैठे हुए जंगली कबूतरों ने डरकर पर फट-फटाए। ऊपर से कुछ ध्वनि-सी सुनाई दी, जैसे कोई जाग उठा हो। मैं फिर कुंडी हिलाने ही लगा था कि रुक गया। इन चन्द मिनटों में ये दुःखमय सात महीने अपनी विविध विपत्तियों के साथ मेरी कल्पना के सम्मुख फिर गए—लाहौर में हकीमों और डाक्टरों के पीछे मारे मारे फ़िरना, सब ओर से निराश होकर अस्पताल की शरण लेना, खर्च चलाने के लिए दिन रात काम करना, एक्स-रे, यक्ष्मा का फतवा, अस्पताल के आशा और निराशा के दिन, कभी आशा का सहारा लेना, कभी निराशा का दामन पकड़ना, गर्मियों का कष्ट-दायक मौसम, पालमपुर पहाड़ी पेचिस, वापसी और अब हड्डियों का पिञ्जर यह पत्नी, वैसी ही काली रात और वही मकान जिसे सात महीने पहले छोड़ दिया था—सब कुछ आंखों के सामने फिर गया।

मां ने दरवाज़ा खोला, मैंने चरण छुए, उन्होंने आशीश दी, छाया ने मरी हुई आवाज़ में प्रणाम किया, किन्तु उठ न

सकी। मां ने आशीर्वाद दिया–शीघ्र ही स्वस्थ हो बेटी और अपने घर प्रसन्न रह। फिर छाया ऊपर के खुले और हवादार कमरे में पहुंचाई गई। कुलियों को मैंने मजदूरी दी और छाया के आराम का प्रबन्ध करके दालान में आया और मां से संक्षिप्त रूप में अपने दुःखों की कहानी कही। बच्चे को देखने के लिए मेरी रूह तड़प रही थी। मां से पूछा। कहने लगीं–ऊपर कैलाश के पास सोता है, अब तो 'चाचा' 'ताया' सब कह लेता है, हमारा तो डर मानता ही नहीं, बस उसी से डरता है।

जल्दी-जल्दी सीड़ियां नापता मैं ऊपर कैलाश के कमरे में पहुंचा। वह कदाचित् अभी-अभी पढ़ कर सोया ही था या शायद मेरी आवाज से जाग उठा था। उसने लैम्प जलाया मेरा अढ़ाई वर्ष का अरुण बचपन की मीठी मादक नींद सो रहा था। उसे क्या मालूम, उसकी मां अपनी हसरतों और अरमानों, इच्छाओं और आशाओं के साथ, मौत की गहरी अन्धकारमय खोह के मुंह पर पहुंच चुकी है और किसी घड़ी भी अथाह अंधेरे में लोप हो जायगी; उसे क्या मालूम उसका पिता विपत्तियों के निरन्तर हमलों से थक गया है, हार गया है। वह तो सो रहा था, कष्टों और दुःखों से बेखबर–शैशव की मीठी, मद-भरी नींद !

मां ने हंसकर कहा–हम तुम दस आवाजे दें तो शायद न जागे, और कैलाश अगर एक ही आवाज दे-दे तो तत्काल जाग उठे। और कैलाश से बोलीं––कैलाश जरा देना आवाज !

कैलाश ने अपनी शुष्क और भयानक हंसी के साथ आवाज दी। बच्चे ने सोते-सोते कहा––हां जी !

कैलाश ने कहा--उठ !

बच्चा उठने लगा ।

--लेट जा !

और बच्चा लेट गया ।

--गा !

और सहमा हुआ वह सोते सोते तान लगाने लगा ।

--उठ और नाच ! कैलाश ने जैसे अपनी सफलता पर फूलते हुए गर्व से कहा !

बच्चा डर कर उठने लगा था कि मैंने उसे सीने से चिमटा लिया । इतनी संगदिली ! ऐसे जालिम के साथ रह कर बच्चा क्या शोख और चञ्चल होगा ? उस जैसा शुष्क और गंभीर बन जाए तो सन्देह नहीं । लेकिन मैं तो बच्चों की चञ्चलता को प्यार करता हूं, मुझे तो उनकी शोखी पसन्द है । जो बच्चा शोख नहीं वह बच्चा कैसा ? वह तो बूढ़ा है । मां ने कहा–बस डरता है तो इसी गुरु से मेरे मुंह पर तो थप्पड़ दे मारता है । हठी ऐसा है कि क्रोध आ जाए तो जो वस्तु हाथ में आए पटक देता है । किन्तु यदि कहीं कैलाश ऊपर से भी कह दे, 'अरुण', तो बस वहीं का वहीं, चुप चाप खड़ा हो जाता है । इसके पश्चात् मां हंसी, किन्तु मैं बच्चे को सीने से चिमटाये अपनी चारपाई पर जा लेटा और सोचने लगा, मां के जीते जी यह हाल है, उसके मरने बाद क्या होगा ?

× × × ×

फिर वह दृश्य भी मेरी आंखों के सामने फिर गया, जिस

का जिक्र अभी मां ने किया था, और एक बार मेरा रक्त खौल उठा। सुबह छाया अच्छी भली थी। आज उसके जीवन का नाटक समाप्त हो जायगा, कम-से कम इस बात की कोई आशंका न थी और मैं एक काम से कपूरथला चला गया था। मां ने मुझे बताया कि लगभग चार बजे मोहल्ले में फेरी लगा-कर कपड़े बेचने वाला आया और छाया ने उससे कपड़े ख़रीदे। फिर दर्जिन को बुलाकर उसे सीने के लिए दिए। इसके पश्चात् अचानक उसकी तबीयत घबरा गई और उसने कहा—मां पानी पिलाओ। मालूम होता है, अन्तिम घड़ी आ पहुंची है। मां ने पानी पिलाया। इसके पश्चात् वह अचेत हो गई और उसकी सांस चलने लगी। घर उस समय मां और कैलाश के अतिरिक्त कोई था नहीं और चारपाई अथवा ऊपर की मंजिल में मर जाना हिन्दुओं में बुरा समझा जाता है। मां ने कैलाश की मिन्नत की—किसी तरह मेरी सहायता करके इसे नीचे पहुंचा दो। किन्तु उन्हें उठाना तो दूर रहा वह तो बीमार के कमरे के पास भी न फटकता था और मां ठहरीं पतली-दुबली और दुर्बल। किन्तु चारपाई पर मरने से उसकी आत्मा नरक में जायगी, इस डर से जिस तरह बन पड़ा उन्होंने उसे उठाया। सीढ़ियों तक भी न ले जा सकीं, वहीं जमीन पर रख दिया और कैलाश को आवाज दी। वह उतरा भी नहीं। अन्त में इसी तरह घिसटतीं घिसटातीं उसे नीचे लाई और लाकर ठंडे फ़र्श पर लिटा दिया मनुष्य और उसका अहंकार! मृत्यु के पश्चात् तेरी जो दुर्गती होगी उसकी तो खैर, मौत से पहले भी तेरी यह दुर्दशा हो सकती है।

उस समय छाया को होश आया और किसी अज्ञात-शक्ति के बल पर वह जरा सी उठी। उसने आंखें फाड़कर इधर-उधर देखा। कदाचित् मृत्यु के आगमन से घबरा गई थी—मैं कहाँ हूं ?

मां ने कहा—तुम्हारी तबीयत घबरा गई थी।

—मुझे ऊपर ले चलो।

किन्तु उत्तर सुने बिना वह लेट गई और नहीं उठी।

मां ऊपर जाकर उसका बिस्तरा ले आई, उन्होंने बिस्तर उसके नीचे बिछाया, सिरहाने दाने रखे और दिया जला दिया।

मृत्यु से पहले मेरी पत्नी की जो दुर्दशा हुई उसका हाल सुनकर मुझ पर उन्माद सा छा गया। चाहा कि मर जाऊं या मार दूं, किन्तु मौका ही ऐसा था, खून के घूंट भरकर रह गया। बेबसी ने मेरी ज़बान बन्द कर दी। आंखों ने उसके पिचके हुए गालों, बन्द आंखों और सटे हुए ओठों को देखा और रो दीं।

सुबह उसका शव आग को सौंप दिया गया। मैंने अन्तिम बार उसकी सूरत देखी थी। सुन्दर चांद से चेहरे पर स्याही फिर गई थी, भरे हुए गाल पिचक गये थे, और आंखें गढ़ों में बन्द थीं। हां, दांत वही थे–खूबसूरत, श्वेत दांत, जिनसे ओंठ ऐसे चिमट गए थे, जिस तरह शरीर को मौत चिमट गई थी। इस कलेवर में कितना भोला-भाला-दिल था; उसे कितनी जल्दी टेस पहुंच जाती थी, किन्तु अब...अब...यह निठुर धरती, ये सूखी लकड़ियां और यह आग ! सन्तोष का बांध टूट गया,

रुलाई आ गई, खूब जी भरकर रोया। वापस आया तब सिर भारी था। आकर चुपचाप कमरे में लेट गया। दिन भर शोक करने के निमित्त आने वालों का ताँता बँधा रहा, किन्तु मुझे इन बातों से घृणा थी।

भाई के रूखे व्यवहार ने मेरे दुःख को दुगुना कर दिया था।

× × × ×

जब बारहवें दिन क्रिया-कर्म से निबट कर मैं लाहौर जाने को तैयार हुआ तो उस समय अचानक कैलाश ने आकर कहा—भाई साहब आप अरुण को डाक्टर को दिखाए जाते तो अच्छा था, उसकी तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती। मैंने एक निमिष के लिए अपने बच्चे को देखा, जो कैलाश की गोद से चिपटा हुआ था—कमजोर और उदास! मैंने उसे गोद में उठा लिया। इन दिनों मैं उसकी ओर से बेपरवाह सा हो गया था। वास्तव में अपने दुःख में मैं अपने आप को, अपने बच्चे को, सब को भूल गया था। छाया की मृत्यु सम्भावना से दूर न थी, सामने दिखाई ही देती थी, किन्तु फिर भी, प्यार और मुहब्बत के, एकता और अनन्यता के चार वर्षों के बाद यह बिछोह! तबीयत पर उन्माद और उदासी छाई जाती थी। मैंने उस गाड़ी से जाने का विचार छोड़ दिया और बच्चे को डाक्टर के यहाँ ले गया। कोई विशेष रोग तो था नहीं उसे, हाँ दुर्बलता थी और गले पर कुछ गिल्टियाँ थीं। डाक्टर साहब ने उसे ताकत की दवाई दी और गले पर आयोडेक्स लगा दी। शाम को जब मैं फिर

जाने लगा तब कैलाश ने आकर पूछा--भाई साहब डाक्टर ने क्या आदेश दिया है? मैंने कहा–यह ताकत की दवा है। एक चम्मच प्रातः सायं इसे पिला दिया करना। मैं आयोडेक्स तुम्हें लाहौर से भेज दूंगा और कोई अच्छी सी शक्तिवर्धक औषधि भी।

और अभी लाहौर आए मुझे कुछ ही दिन हुये थे कि कैलाश का पत्र पहुँचा। लिखा था--भाई साहब, आयोडेक्स भेज दीजिए। मेरी तबीयत वहाँ से आने के बाद कुछ ठीक न रही थी, कुछ विचित्र प्रकार का आलस जी पर छाया रहता था। मैं औषधियां न भेज सका। कैलाश के दो पत्र और आए किन्तु मुझे कुछ हरारत रहने लगी थी। फिर उसका एक और पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था--ताकत की दवा खत्म हो गई है उससे विशेष कोई लाभ नहीं हुआ, अच्छा हो यदि आप कोई दूसरी औषधि भेज दें। उस दिन मेरी तबीयत ठीक न थी, तो भी मैं डाक्टर के यहां गया। उसके आदेशानुसार मैंने 'ग्रीमल्ट सिरप' की एक शीशी खरीदी और आयोडेक्स लेकर वापस लौटा। सोच रहा था कि किस तरह दोनों चीजें भेजूं कि इतने में कैलाश का तार आया--अरुण की हालत नाजुक है जल्दी पहुंचो।

मेरे हाथ पैर फूल गए। टाइम देखा, गाड़ी छूटने में दस मिनट थे, भागा-भागा स्टेशन पर पहुंचा। इधर मैंने पायदान पर पांव रक्खा, उधर गाड़ी चल दी। जाकर सीट पर बैठ गया और फिर लेट गया।

एक यात्री नें पूछा--आप की तबीयत ठीक नहीं क्या ?

किन्तु मैं बोला नहीं, चुप-चाप लेटा रहा। ठीक समय पर गाड़ी लोहियां रुकी। मैं जल्दी-जल्दी टिकट देकर घर की ओर भागा। थोड़ा सा मार्ग था, पर समाप्त होने में ही न आता था। कुछ ज्वर, कुछ चिन्ता--मेरे पाँव काँप रहे थे। घर पहुँच कर देखा बच्चे को बहुत तेज बुखार है और ज्वर की तीव्रता से उस पर बेहोशी छाई हुई है। मैं भागा भागा डाक्टर को लाया। मालूम हुआ निमोनियां हो गया है, अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। तनिक-सी असावधानी से बच्चे की जान जा सकती है।

मुझे स्वयं उस समय ज्वर था। मैंने बेवसी की आंखों से कैलाश की ओर देखा, किन्तु शायद डाक्टर की बात से उसके दिल को धक्का पहुँचा था। बच्चे से उसे बहुत प्यार हो गया था। दिन रात वह उसके साथ ही रहता था। मैंने देखा कैलाश का रंग पीला पड़ गया है। और टकटकी बाँधे बच्चे की ओर देख रहा है--हसरत भरी आंखों से, उस साहुकार की भांति जिसके सामने उस का सब कुछ लुट रहा हो।

मैंने उसके कन्धे को छुआ।

वह चौंक पड़ा।

मैंने कहा--मुझे कुछ हरारत-सी हो रही है, जाओ डाक्टर साहब के यहां से औषधि ले आओ। और चुपचाप वह डाक्टर साहब के साथ चला गया।

× × ×

इसके बाद जिस परिश्रम और सावधानी से, जिस प्यार

और लगन से उसने बच्चे की सेवा की, वैसी न तो मैं और न उसकी स्वर्गीय माँ ही कर सकती। सारी-सारी रात वह उसके सिरहाने बैठा रहा, समय समय पर दवाई पिलाता रहा और मैं? मैं तो चेतना-हीन-सा शक्ति-हीन-सा काम करता था।

एक रात बादल घिर आए बिजली चमकने लगी और वायु वेग से मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठे। मेरा दिल बैठ गया। बच्चे की दशा कुछ सुधर रही थी। खयाल था कि यदि और कुछ दिन ऐसे ही बीत गए तो आराम आ जायगा, किन्तु ये कम्बख्त घटाएं, इनको आज ही उठना था। हमने दरवाज़े लगा दिये, कमरे में अँगीठी जला दी। कोई ११ बजे बच्चा तेज, उखड़ी-उखड़ी सांस लेने लगा। मैंने कैलाश से कहा--किसी तरह डाक्टर को बुला लाओ, आसार अच्छे नहीं दिखाई देते। चुपचाप कैलाश चल दिया। खिड़की के शीशे से मैंने देखा--मूसलाधार मेंह बरस रहा है, एक हाथ में छाता संभालता, वायु के वेग का, अंधेरे का, वर्षा का मुकाबला करता कैलाश जा रहा है। शरीर पर केवल एक कमीज और निकर पहने था। सहसा एक विचार से मेरा हृदय धड़क उठा। मैंने जरा-सी खिड़की खोल कर उसे जोर से आवाज दी--कैलाश, कम्बल लेते जाओ। सर्दी खा जाओगे। किन्तु उसने शायद नहीं सुना या सुनकर भी वापस मुड़ना उचित नहीं समझा। उन्मादियों की भांति वह बढ़ता ही गया। मैंने खिड़की बन्द कर दी और दीर्घ निश्वास छोड़ कर बच्चे के सिरहाने आ बैठा।

कोई एक घंटे के बाद डाक्टर आया, अपना निचुड़ता हुआ कोट खूटी पर टाँग कर, आग ताप कर, डाक्टर ने स्टेथोस्कोप निकाला, बच्चे का निरीक्षण किया, और एक दवा का कुछ अंश चम्मच में डालकर उसके मुँह में उँड़ेल दिया।

--आज की रात यदि बच गया तो डर नहीं। यह कह कर डाक्टर ने कोट पहना, छाता उठाया और चलने को उद्यत होते हुए मेरी ओर देखा। मैंने कोट की जेब से रुपये निकाल कर उनकी फीस दी। डाक्टर चले गए, कैलाश भी दवाई लेने उनके साथ गया। सारी रात हम साँस रोके बच्चे की हालत देखते रहे, समय के अनुसार दवा पिलाते रहे, परन्तु इस तमाम परिश्रम, मेहनत और सावधानी के बावजूद भी, बच्चे को न बचना था और न बचा। रात के पिछले पहर मेरा शरीर शिथिल हो रहा था, अंग-अंग दुःख रहा था, इसलिए मैं कैलाश को उसके सिरहाने खड़ा छोड़ कर वहीं फर्श पर लेट गया।

माँ की चीख से मैं जाग पड़ा। देखा कि बच्चा फर्श पर मृत पड़ा है, और रौशनदानों से सुबह का प्रकाश कमरे में झाँक रहा है। शायद उसे जगाने के लिए आया था। किन्तु उसे क्या खबर कि सोने वाले ने मौत से होड़ लगा ली है। वह न जागेगा, न जागेगा--अपनी माँ के पास चला गया है वह।

अभी एक घाव भरा भी न था कि दूसरा लगा। दिन होते घर भर में कोहराम मच गया और मैं तो इतना

निराश हुआ कि हिम्मत हार बैठा। किन्तु चाहे जो कुछ हो, अब जब वह मर गया था, उसे आखिरी मंजिल पर पहुंचाने का प्रबन्ध भी तो करना था। और मैं अपने आपको इतना शिथिल, इतना कमजोर महसूस करता था कि श्मशान तक जाना मुझे दूभर दिखाई देता था। स्त्रियों ने नहला-धुला कर बच्चे को कफ़न में लपेट दिया। पण्डित ने आवश्यक रस्में अदा की। बैठक में बिरादरी के कुछ लोग भी जमा हो गये लेकिन शव को उठा कर कौन ले जाए? मैं जब से आया था, ज्वर से पीड़ित था, और फिर यह चोट! मैंने कैलाश को आवाज दी। वह वहाँ न था। सब कमरों में ढूँढा, न मिला, अन्त को गिरता-पड़ता ऊपर गया। उसके कमरे में पहुंचा। अपने बिस्तर पर वह औंधे मुह पड़ा था।

मैंने उसे आवाज दी, न बोला, हिलाया न हिला। जरा जबरदस्ती से मैंने उसका मुंह अपनी ओर किया। आँखें लाल थीं और बिस्तर आँसुओं से भींग गया था।

मैंने कहा—कैलाश, हौसला करो।

और वह जिसे मैं पाषाण कहता था, बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा।

--o--